वेद-परिचय

(द्वितीय भाग)

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औन्ध



"वेदपरिचय" परीक्षाकी पाठविधि ।

वेदपरिचय ।

॥ द्वितीयो भागः ॥

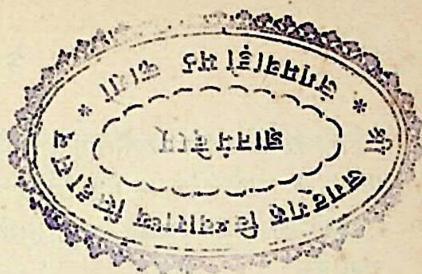
लेखक

भट्टाचार्य श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

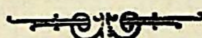
स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् १९९७; शक १८६३; सन १९४१

मुद्रक और प्रकाशक
वसंत श्रीपाद सातवळेकर, बी. ए.,
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)



वेदका अध्ययन।



वेदका अध्ययन करनेसे होगा, न करनेसे कुछ भी नहीं बनेगा। ये ग्रन्थ इतने सुबोध, सुपाठ्य और आसान बनाये हैं कि इनसे और अधिक सुबोध पाठविधि हो नहीं सकती। सर्वसाधारण स्त्रीपुरुष भी अपना नियत थोडासा समय इस कार्य के लिये देंगे, तो ४।५ वर्षोंमें वे वेदज्ञ हो सकते हैं।

इतनी पाठविधि सुगम होनेसेही स्वाध्याय-संघ के सदस्य होकर सैंकडों मनुष्य अध्ययन कर रहे हैं और स्वतंत्र रीतिसे भी सैंकडों लोग अध्ययन करते हैं।

परन्तु इससे कार्य समाप्त हुआ है, ऐसा समझना नहीं चाहिये। क्योंकि सहस्रों वेदाध्यायियोंमें कोई क्वचित् वेदतत्त्वज्ञ हो सकता है। हमें यत्न तो प्रथम इस बातका करना चाहिये कि सहस्रों वेदाध्यायी हों। घरघरमें तथा मोहल्ले मोहल्लेमें तथा ग्रामग्राममें वेदके मन्त्रों का विचार करनेवाले हों। इन वेदविचारकों के होनेके पश्चात् दूसरी अवस्था वेदतत्त्वज्ञों की है। वेदाध्यायी तो हम बना सकते हैं, पर वेदतत्त्वज्ञ बनाना हरएकसे नहीं हो सकता। वह तो बडी बुद्धि का तथा बडे अनुसंधान का कार्य है। वैसे लोग विरला ही होंगे।

❋

इस समय हमारे हाथमें इतनाही है कि वेदाध्यायी पैदा करें। इसके पश्चात् का कार्य बुद्धिमान् पुरुषों के हाथमें होगा।

इसी कार्यके लिये हमने वेदपरीक्षाओंकी आयोजनाका निश्चित कार्यक्रम रखा है–

वर्ष	परीक्षानाम	पाठ्य मंत्रसंख्या	पुस्तकसंख्या	उपाधि
प्रथम	वेदपरिचय	३००	३	वेदपरिचित
द्वितीय	वेदप्रवेश	५००	५	वेदप्रविष्ट
तृतीय	वेदप्राज्ञ	१०००	५	वेदप्राज्ञ
चतुर्थ	वेदविशारद	२०००	५	वेदविशारद
पंचम	वेदपारंगत	५०००	५	वेदपारंगत
षष्ठ	वेदाचार्य	स्वतंत्र खोजपूर्ण निबंध		वेदाचार्य

इन सब परीक्षाओं की पाठविधि निश्चित की है। इनके ग्रंथ क्रमानुसार प्रकाशित होंगे। ५ वर्षोंमें करीब ९ हजार मन्त्रों की पाठविधि होनी है। जो शनैः शनैः अभ्यास करेंगे, उनको लिये थोडी अधिक अवधि लगेगी, पर जो प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन रखेंगे, उनके इस पाठविधिके लिये ५ वर्षोंसे अधिक समय नहीं लगेगा।

वेदाचार्य की परीक्षाके लिये कोई नियत पाठविधि नहीं है। संपूर्ण चारों वेदों की सब संहिताओंमें से किसी एक विषय का खोजपूर्ण निबंध लिखकर स्वाध्याय–मण्डलमें पेश करना होगा।

प्रति पृष्ठपर २००० अक्षर रहेंगे, ऐसे १०० पृष्ठ निबंधके होने चाहिये। वह निबंध स्वतंत्र खोज करके होना चाहिये। किसी अन्यका लिया लेख नहीं चल सकेगा।

वेदसम्बन्धी यही परीक्षा अंतिम होगी और जिसका निबंध उत्तम रहेगा, वही 'वेदाचार्य' उपाधि को प्राप्त करेगा।

तबतककी पाठविधि नियत रहेगी। तथा इनकी मंत्रसंख्या भी नियत रहेगी। जो ऊपर दी है।

हरएक परीक्षाके लिये जितनी मन्त्रसंख्या नियत है, उतनी तैयार होनेपर परीक्षार्थी परीक्षाके लिये तैयार होनेकी सूचना स्वाध्याय-मंडलको देवे। सूचना आनेपर प्रश्नपत्र यहांसे भेजे जांयगे और नियमानुसार परीक्षार्थीके स्थानपर ही परीक्षार्थीने किसी निरीक्षकके सामने उत्तरपत्र लिखकर भेजने होंगे। परीक्षाके नियम तथा परीक्षाके निरीक्षक समय समयपर निश्चित किये जांयगे।

हरएक परीक्षार्थीके लिये अध्ययन करनेका अवसर जितना चाहे उतना मिलेगा। घरमें रहता हुआ वह अध्ययन कर सकेगा। अध्ययन की सब सुविधा इन पाठविधिके ग्रंथोंमें रहेगी। अब किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहा है। केवल वेदके अध्ययन की इच्छा ही चाहिये। जिसके पास इच्छा है, वह ५ वर्षोंमें वेदज्ञ हो सकता है।

स्थानस्थानमें जहां आवश्यकता होगी, वहां वेदमंत्रोंके साथ ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद्, निरुक्त आदि ग्रंथों के पर्याप्त प्रमाण दिये जांयगे। इस तरह इस पाठविधिसे वैदिक धर्मका आवश्यक ज्ञान हो सकता है।

आशा है कि इस पाठविधिसे वैदिक धर्मी वेदका ज्ञान प्राप्त करेंगे।

'वेदपरिचय' परीक्षा की पाठविधि।

स्वाध्याय-मण्डल द्वारा वेद की जो परीक्षाएँ होती हैं, उनकी पाठविधि नियत हो चुकी है। उन परीक्षाओं में प्रथम परीक्षा 'वेद-परिचय' नामक है। इस परीक्षा के लिए तीन सौ वेदमन्त्रों की पाठविधि नियत हुई

है। इस पाठविधिकी प्रथम पुस्तक जिसमें १०० वेदमन्त्र हैं, पाठकों के सामने पहलेही रखी है, और अब उसका दूसरा भाग पाठकोंके सामने रख रहे हैं। तीसरा भाग भी यथासमय प्रकाशित होगा।

इन पुस्तकों में जो वेदमन्त्र दिए हैं, वे फुटकर नहीं हैं, संपूर्ण सूक्तके सूक्त दिए हैं। इससे मन्त्रका अर्थ करने के समय सूक्तके आगे पीछेके मन्त्रोंका अनुसंधान करनेकी रीति पाठकोंके ध्यानमें स्वयं आजाएगी।

इन में मन्त्र, मन्त्र के पद, पदोंका अन्वय, अन्वयका अर्थ तथा भावार्थ दिया है। पश्चात् मन्त्रके पदों का विशेष अर्थ भी स्वतन्त्र परिशिष्ट में दिया है। इसके पश्चात् संक्षिप्त अर्थ इंग्लिश भाषामें दिया है। अन्तमें सूक्तके सुभाषित, जो नित्य स्मरन करने योग्य होते हैं और जिनसे मानव-धर्मका प्रकाश होता है, दिए हैं। इन सबके अध्ययनसे पाठकों को वेदमन्त्रोंका ठीक ठीक आशय ध्यानमें आजायगा।

ये अध्ययन के ग्रन्थ हैं।

पाठविधि के सब के सब ग्रन्थ अध्ययन के लिए बनाए जा रहे हैं। ये केवल एकवार पढकर छोड देनेके नहीं हैं। इनका जहांतक अध्ययन किया जाय, वहांतकके मन्त्र कण्ठ होने चाहिएँ। इनके अध्ययनकी विधि यह है-

१. सबसे प्रथम मन्त्र कण्ठ करिए। मन्त्र कण्ठ होनेके पश्चात्,

२. मन्त्रके पद कण्ठ करिए और साथ साथ अन्वय कैसा होता है यह भी देखिए। यदि मन्त्र और पद कण्ठ हुए होंगे,तो अन्वय स्वयं स्मरणमें रहेगा।

३. मन्त्र और उसके पद कण्ठ करनेके समय मन्त्रोंके स्वर भिन्न हैं और पद होनेपर स्वर भिन्न हुए हैं, यह बात आप के ध्यान में आजायगी।

४. मन्त्र और पद कण्ठ करनेके समय नीचे रेखावाले अक्षर निम्न स्वरमें चिह्नरहित अक्षर उससे उच्च स्वरमें और ऊपर रेखावाले अक्षर उससे ऊंचे

स्वरमें पढिये। मोटे तौरपर उक्त अक्षरोंके क्रमशः 'सा, रे, ग' ये स्वर होंगे। इस उच्चारण की एक पुस्तक तैय्यार की जा चुकी है। पाठकोंको इस परीक्षा के पश्चात् उसका अध्ययन करना चाहिए। उसमें स्वरोंके उच्चार की रीति ठीक ठीक दी है।

५. मन्त्र, पद और अन्वय कण्ठ होनेके पश्चात् अर्थको भी कण्ठ करनेके समान ही स्मरणमें रखना चाहिए। मन्त्र बोलते ही, पद, अन्वय और अर्थ तथा भावार्थ पुस्तक देखे बिना बोल सकें, ऐसा आपका अध्ययन होना चाहिए। आपके किसी मित्रके हाथ में पुस्तक रहे और आप मन्त्र, पद, अन्वय अर्थ और भावार्थ जबानी बोलते जाएँ, जब इस प्रकार मन्त्र शुद्ध जबानी याद होंगे, तभी समझे कि इस पुस्तक का अध्ययन संपूर्ण हुआ।

६. पाठक यहाँ दिया हुआ अर्थ देखें और कण्ठ करें, परन्तु साथ ही अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे भी अधिक अर्थ की खोज करें। स्वतन्त्र रीतिसे विचारशक्ति का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक है।

पाठक यदि एक एक मन्त्र प्रतिदिन याद करते जायँगे, तो तीन सौ मन्त्रोंकी पुस्तक एक वर्षमें निःसंदेह याद हो सकेगी। जैसे जैसे अभ्यास बढता जाएगा, वैसे वैसे पाठशक्ति भी बढेगी और एक वर्षमें इससे दो तीन गुणे मन्त्र स्मरणमें रह सकेंगे।

आशा है पाठक इस पाठविधिसे अधिक से अधिक लाभ उठाएँगे।

औंध (सातारा)
१-४-४१

निवेदक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
संचालक, स्वाध्याय-मण्डल



विषयसूची ।

वेदपरिचयः ।

द्वितीयो भागः ।

पुरुष–सूक्तम् ।

[ऋ० मं० १०, सू० ९०; वा० यजु० ३१।१–१६। काण्व० ३५।१–१६; साम० ६१७–६२१; अथर्व० १९।६।१–१६]

ऋषिः– नारायणः। देवता– पुरुषः। छन्दः– अनुष्टुप्, १६ त्रिष्टुप्।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पदानि– सहस्रऽशीर्षा। पुरुषः। सहस्रऽअक्षः। सहस्रऽपात्। सः। भूमिं। विश्वतः। वृत्वा। अति। अतिष्ठत्। दशऽअंगुलं ॥१॥

अन्वयः– सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः (अस्ति), सः भूमिं विश्वतः वृत्वा, दशांगुलं अति-अतिष्ठत् ॥१॥

अर्थ—(सहस्र-शीर्षा) सहस्रों मस्तकोंसे युक्त, (सहस्र-अक्षः) हजारों आंखोंसे युक्त, और (सहस्र-पात्) हजारों पांवों से युक्त (पुरुषः) एक पुरुष-एक परमात्माहि है। (सः) वह (भूमिं विश्वतः वृत्वा) भूमिको चारों ओरसे घेरकर (दश-अंगुलं) दश इन्द्रियोंके क्षेत्रका (अति) अतिक्रमण करके (अति-ष्ठत्) अधिष्ठाता होकर रहा है।

भावार्थ—जिसको हजारों (या लाखों) मस्तक, आंख, पांव आदि अवयव हैं, वह परमात्मा पृथिवी आदि लोकलोकांतरों को घेर कर, चारों ओरसे व्यापकर, दस इंद्रियोंसे जिसका ग्रहण होता है, उस सृष्टिका अधि-ष्ठाता हुआ है।

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणिमात्रोंके जितने सिर, आंख, नाक, कान, मुख, हात, पांव, पेट, जंघा, घुटने आदि अवयव हैं, वे सब अवयव उसी परमात्मा के अवयव होनेसे, उसके लाखों अवयव हैं ऐसा वर्णन यहां किया है। यहां का 'सहस्र' शब्द अनंतवाचक है।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ **सहस्र**= हजारहां, लाखों, अनंत, असंख्य।

२ **पुरुषः**=(पुरि-शयः)=(पुरि) नगरीमें (शयः) सोनेवाला, रहने-वाला, (पुरि) शरीरमें (शयः) रहनेवाला, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म। ईश्वर। प्रकृतिमें सर्वत्र व्यापनेवाला पुरुष।

३ **भूमिः**=पृथ्वी, प्रकृति।

४ **विश्वतः**= सर्वत्र, सब ओरसे।

५ **वृत्वा**= घेरकर।

६ **अत्यतिष्ठत्**= राज्य करता है, नियमन करता है, अधिष्ठाता हुआ है, परे ठहरा है, उल्लंघन करके रहा है।

७ दश-अंगुलम्= दस इंद्रियोंका विषय होनेवाली सृष्टि, जिसका ग्रहण दस इंद्रियोंसे होता है। नाक, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कर्ण, हाथ, पांव, मुख, शिस्न, गुदा इन दस इंद्रियोंका व्यवहार जिसमें होता है। अथवा दो नाक, दो नेत्र, दो कान, एक जिह्वा, त्वचा, मन और बुद्धि से जिस में व्यवहार होता है, वह सृष्टि।

पाठभेद।

सहस्रबाहुः पुरुषः० । (अ० १९।६।१)

यहां 'सहस्रबाहुः' ऐसा अथर्ववेदमें पद है। "जिसके लाखों बाहु हैं," यह अर्थ पूर्वोक्त अर्थके साथ संगत है। 'शीर्षा'के स्थानपर 'बाहु' पद है।

स भूमिँ सर्वतः स्पृत्वा । (वा० य० ३१।१)

यह यजुर्वेद का पाठ है। इसका वही अर्थ है, जो पूर्वोक्त मन्त्रके 'स भूमिं विश्वतो वृत्वा' का है। ऋग्वेदके मन्त्रभाग का अर्थहि यजुर्वेदके मन्त्रने यहाँ दर्शा दिया है।

(पुरुषः) The universal Soul (सहस्रशीर्षा) hath a thousand heads, (सहस्राक्षः) a thousand eyes and (सहस्रपात्) a thousand feet. (भूमिं विश्वतो वृत्वा) Pervading earth on every side, (सः) He (अति अतिष्ठत्) governs from behind (दश-अंगुलं) [the world perceived by] ten organs.

विश्वरूपी परमात्मा।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥



पदानि– पुरुषः । एव । इदं । सर्वं । यत् । भूतं ।यत् । च । भव्यं । उत । अमृतऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥२॥

अन्वयः– यत् भूतं, यत् च भव्यं, इदं सर्वं पुरुषः एव । उत अमृतत्वस्य ईशानः, यत् अन्नेनं अतिरोहाति ॥२॥

अर्थ– (यत् भूतं) जो भूतकालमें हुआ था, (यत् च भव्यं) और जो भविष्य में होगा, तथा (इदं) यह जो वर्तमानकाल में है, वह (सर्वं) सब (पुरुषः एव) अकेला परमात्मा ही है । (उत) और वह (अमृतत्वस्य ईशानः) उस अमरपनका स्वामी है, (यत्) जो अमरपन (अन्नेन) अन्न के द्वारा [प्राप्त होनेवाले सुखसे] (अति रोहति) बहुत ही ऊपर, ऊंचा, है ॥२॥

भावार्थ— भूत, वर्तमान और भविष्य कालों में रहनेवाला जो विश्व है, वह सब विश्व परमात्मा ही है । यही परमात्मा अमरत्व देनेवाला है । और यही अमरत्व भोगोंसे प्राप्त होनेवाले सुखसे बहुतहि उच्च और श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला है ।

पाठभेद ।

अथर्ववेद में यह मन्त्र सुक्त में चवथा है—

'उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ।' (अथर्व० १९।६।४)

ऐसा पाठ है । यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें 'भाव्यं' पाठ है । सामवेद में दूसरे और तीसरे मन्त्रों के आधे भाग उलटपुलट हुए हैं ।

'अमृतत्वस्य ईशानः' का ही अर्थ 'अमृतत्वस्य ईश्वरः' में स्पष्ट हुआ है । सायण इस मन्त्र में 'अन्येनाभवत्सह' ऐसा पाठ मानते हैं। और 'अन्न के साथ जो उत्पन्न या प्रकट होता है,' ऐसा अर्थ करते हैं। पर मन्त्र में पाठ 'यत् अन्येन सह अभवत्' ऐसा है, जिसका आशय 'जो अन्य के साथ प्रकट होता है।' अर्थात् 'जो अन्य भाव से द्वैतभाव के साथ प्रकट होता है,' उस स्थितिका भी वही स्वामी है, अर्थात् 'द्वैतभावमय जगत् और अद्वैतभावमय अमरत्व इन दोनों अवस्थाओं का वही अकेला एक स्वामी परमात्मा ही है।' आत्मा ही द्वैत और अद्वैत का अनुभव करनेवाला है, यह इसका आशय है। अन्य भाव के साथ साथ ही अनन्यभाव रहता है। क्योंकि 'अन्य और अनन्य' ये सापेक्ष भाव हैं।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ अमृतत्वं= अमरपन, मोक्ष।

२ ईशानः, ईश्वरः= स्वामी, मालिक, अधिष्ठाता।

३ अन्न= भोग्य वस्तु, खानेकी वस्तु।

४ अतिरुह्= अतिक्रमण करके बढना, अत्यंत बढना, परे अथवा ऊंचा रहकर बढना।

(पुरुषः) The universal Soul is (एव) in truth (इदं सर्वं) this all: (यत् भूतं) what hath been, [what is,] and (यत् च भव्यं) what yet shall be; (उत) and He is (अमृतत्वस्य ईशानः) the Lord of immortality, which (अतिरोहति) far transcends (यत्) what [is obtained] (अन्नेन) by food.

एतावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑श्च॒ पूरु॑षः। पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥३॥

पदानि– एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः । पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतं । दिवि ॥३॥

अन्वयः– अस्य एतावान् महिमा । अतः च पुरुषः ज्यायान् । अस्य पादः विश्वा भूतानि ।अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतम् ॥३॥

अर्थ– (अस्य) इस परमात्माकाहि (एतावान् महिमा) यह सब महिमा है। परंतु (अतः ज्यायान्) इससे बहुतहि बडा (पुरुषः) वह परमात्मा है । क्योंकि (अस्य पादः) इसका एक अंश हि (विश्वा भूतानि) ये सब भूतमात्र हैं और (अस्य त्रिपात्) इसका शेष तीन भाग (दिवि अमृतं) द्युलोक में अमर है ॥३॥

भावार्थ— इस विश्व में जो प्रकट हो रहा है, वह महिमा इसी परमात्मा का है, परन्तु वह परमात्मा इससे बहुत ही बडा है। अर्थात् इस विश्वमें जो कुछ दीखता है, वह उसकी महान् शक्तिका एक अल्पसा अंश है । यह सब विश्व उसका एक अंशमात्र है । शेष अनन्त द्युलोकमें अमृतरूपमें रहता है।

परमात्मा का एक अल्प अंश इस विश्व के रूप में प्रकट होता है, परन्तु इससे बहुत बडा भाग सदा द्युलोकमें अमृत रूपमें रहता है । विश्वका रूप बनने बिगडनेवाला है, अर्थात् मृत और अमृत रूप है, परन्तु जो द्युलोक में उसका अनन्त रूप है, वह अमृत स्थितिमें सदा एक जैसा रहता है। ब्रह्म के दो रूप हैं (द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे, मूर्तं चैवामूर्तं च) मूर्त और अमूर्त।

पाठभेद ।

अथर्ववेद में **'तावन्तो अस्य महिमानः'** (अथर्व० १९।६।३)

सामवेद का पाठ ऐसा है—

तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः । (साम० ६२०)
पादोऽस्य सर्वा भूतानि ॥ (साम० ६१९)

साम का पाठ वही अर्थ बताता है, जो ऊपर दिया है। अथर्ववेदके पाठ में महिमा बहुवचन में है इससे स्पष्ट होता है कि, परमात्मा के अनन्त महिमा हैं।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ **महिमा**= सामर्थ्य, महत्त्व, शक्तिविशेष, प्रभाव।
२ **पादः**= अंश, चौथा भाग, अल्प अंश।
३ **भूतं**= प्राणिमात्र, पञ्च महाभूत, विश्व बना हुआ।
४ **अमृतं**= अमर।
५ **दिवि**= द्युलोकमें, प्रकाशमें स्वर्गमें।

(एतावान्) So mighty is (अस्य महिमा) His grandeur; yea, (अतः ज्यायान्) greater than this (च पूरुषः) truely is the Supreme Being. (विश्वा भूतानि) All the creatures are (अस्य पादः) one-fourth of Him, and His (त्रिपाद्) three-fourths (अमृतं) eternal Blissful Life-force is in heaven.

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

पदानि– त्रिऽपात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशने इति । अभि ॥४॥

अन्वयः– त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उत् ऐत् । अस्य पादः इह पुनः अभवत् । ततः विष्वङ् साशनानशने अभि वि अक्रामत् ॥४॥

अर्थ — (त्रिपात् पुरुषः) तीन भाग परमात्मा (ऊर्ध्वः उदैत्) उच्च भाग में ऊपर प्रकाशता है और (अस्य पादः) इस परमात्माका एक भाग (इह) इस विश्वमें (पुनः अभवत्) वारंवार विविधरूप बनता है । अर्थात् (ततः) इससे (विष्वङ्) विविधरूप में (साशन-अनशने) खानेवाले और न खानेवाले का (अभि) लक्ष्य रख कर, स्वयं (व्यक्रामत्) विभक्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— परमात्मा का तीन भाग ऊपर अमृतस्वरूप में प्रकाशता है । उसका केवल एक अल्पसा अंश इस विश्व में वारंवार इस सृष्टिके विविध रूपों में प्रकट होता हैं । अर्थात् वह छोटासा अंश विश्वमें खानेवाले और न खाने वाले (चेतन और जडके) अनेक रूपोंमें अपने आपको विभक्तसा करता है ॥४॥

पाठभेद ।

अथर्ववेद में यह मन्त्र निम्नलिखित पाठान्तर के साथ आया है—

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत्पुनः ।
तथा व्यक्रामद्विष्वङऽशनानशने अनु ॥ (अथर्व० १९।६।२)

अर्थ — (त्रिभिः पद्भिः) अपने तीनों भागोंके साथ वह (द्यां अरोहत्) द्युलोक पर चढा है और इसके (पादस्य) एक भागका (पुनः) वारंवार (इह) यहां इस सृष्टि के रूपमें (अभवत्) बनता है, अर्थात् (अशन-अनशने) खानेवालों और न खानेवालोंके रूप के किंवा चेतन और जडके रूपके अनुकूल (तथा) जैसा चाहिये वैसा (विष्वङ् वि अक्रामत्) चारों ओर उस अपने भाग को विभक्त करता है।

इसका आशय वही है, जो ऊपर के मन्त्र का है, केवल पदोंकाहि भेद है।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **उदैत्**= ऊपर गया है। उदयको प्राप्त हुआ है।

२. **विष्वङ्**= (विषु-अञ्चू) = चारों ओर जाना, व्यापना, अनेक दिशाओंमें बिखरना।

३. **व्यक्रम्** = (वि-क्रम्) = जाना, बढना, विभक्त होना।

४. **साशनानशन**= (साशन-स+अशन) भोजन करनेवाला, चेतन; (अनशन-अन्+अशन्) भोजन न करनेवाला, अचेतन, जड।

(त्रिपाद्) With three-fourths (पुरुषः) the Supreme Being (ऊर्ध्वः उदैत्) rose up. (पादः) One-fourth (अस्य) of Him (पुनः) again and again (अभवत्) comes into being (इह) here. (ततः) Thence (वि अक्रामत्) He becomes divided (विष्वङ्) into every form & in every direction, i. e., into (साशन-अनशने अभि) what eats & what eats not (into animate and inanimate creations).

तस्माद्विराळजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

पदानि— तस्मात् । विऽराट् । अजायत । विऽराजः । अधि । पुरुषः । सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिं । अथो इति । पुरः ॥५॥

अन्वयः— तस्मात् विराट् अजायत । विराजः अधि पुरुषः । सः जातः अति अरिच्यत । पश्चात् भूमिं अथो पुरः ॥५॥

अर्थ— (तस्मात्) उस एकपात् परमात्मासे (विराट्) विराट् [जिसमें सूर्यचन्द्रादि विविध पदार्थ प्रकाशते हैं ऐसा] पुरुष (अजायत) प्रकट हुआ। इस (विराजः अधि) विराट् [पुरुष के ऊपर] एक अधिष्ठाता (पुरुषः) पुरुष हुआ। (सः जातः) वह प्रकट होते हि (अति अरिच्यत) अतिरिक्त अर्थात् विविध रूपोंमें विभक्त हुआ। (पश्चात् भूमिं) पहले भूमि बनी और (अथो पुरः) उसके नंतर पृथ्वीके ऊपरके विविध देह बने ॥५॥

भावार्थ— [परमात्मा के एक अल्पसे अंशसे यह सब सृष्टि बनी, ऐसा पूर्व मन्त्र में कहा, उसके अनुसंधानसे इस मन्त्रका आशय देखना योग्य है] उस अंशसे ये सूर्यचन्द्रादि सब दैदीप्यमान गोल बने, इन सबका नियमन करनेवाला एक अधिष्ठाता निर्माण हुआ। वह प्रकट होतेहि अनेक वस्तुओं की निर्मिति हुई। प्रथमतः पृथ्वी बनी, उसके पश्चात् उस पृथ्वीपर रहनेवाली विविध वस्तुएं बनीं, अर्थात् अनेक छोटेमोटे देह बने ॥५॥

यजुर्वेद और सामवेदका पाठ 'ततो विराडजायत' ऐसा है (सा० ६२१। अथर्ववेद का पाठ ऐसा है—

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः। (अथर्व० १९।६।९)

'(अग्रे) प्रारंभ में (विराट्) विराट् पुरुष (सं अभवत्) उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुआ और इस विराट् के ऊपर अधिष्ठाता, नियामक अथवा शासक भी हुआ है।'

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१. विराट्= (विविधानि राजन्ते) जिसमें अनेक वस्तुएं प्रकाशती हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, नक्षत्र आदि का प्रकाश इस में है, अतः इसको विराज् कहते हैं।

२. अतिरिच्यत् (अति+रिच्)=वडा होना, विशेष शक्ति से युक्त होना, पृथक् पृथक् होना।

३ पुरः= (पूर्यते इति) = जो स्वयंपूर्ण हैं, सप्तधातुओंसे परिपूर्ण हैं (देह), अन्नादि साधनोंसे जो पूर्ण हैं (नगर, पुरियां)।

(तस्मात्) From Him this (विराट्) shining universe (अजायत) was born, and (विराजःअधि) upon this universe (पुरुषः) a governor was appointed; (स जातः) as soon as He came into being He (अति अरिच्यत) first predonmiated over (भूमिं) the earth (पश्चात् अथो पुरः) and then over the different bodies (on it).

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसंतो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

पदानि– यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यज्ञं । अतन्वत । वसंतः । अस्य । आसीत् । आज्यं । ग्रीष्मः । इध्मः । शरत् । हविः ॥६॥

अन्वयः– यत् देवाः यज्ञं पुरुषेण हविषा अतन्वत, (तदा) अस्य आज्यं वसंतः, इध्मः ग्रीष्मः, हविः शरत् आसीत् ॥६॥

अर्थ — (यत्) जब (देवाः यज्ञं) देवोंने यज्ञ को (पुरुषेण हविषा) परमात्मा से बने सृष्टिरूप हविके द्वाराहि (अतन्वत) फैलानेका कार्य किया, उससमय (अस्य) इस यज्ञ का (आज्यं वसन्तः) घी वसन्त ऋतु था, (इध्मः ग्रीष्मः) इन्धन ग्रीष्म था और (हविः शरत् आसीत्) हवनसामग्री शरदृतुही थी ॥ ६ ॥

भावार्थ— देवोंने परमात्मा से बनें हुए सृष्टिरूप हवनद्रव्यसे हि सबसे प्रथम यज्ञ किया। उस समय वसन्तऋतुमें उत्पन्न पदार्थ घीके स्थानमें, ग्रीष्म ऋतुमें उत्पन्न पदार्थ इन्धन के स्थानमें, तथा शरदृतुमें उत्पन्न पदार्थ हविके स्थानमें वर्ते गये थे ॥६॥

परमात्मा का एक अंश इस संसारमें वारंवार उत्पन्न होता है, विविध रूपोंमें प्रकट होता है, ऐसा पूर्व स्थानमें (मन्त्र ४में) कहा, तथा (मन्त्र ५में) कहा कि वही अंश पृथ्वी और पृथ्वीपर के विविध शरीरोंके रूपोंमें प्रकट हुआ। इस तरह विश्व निर्माण होते ही देवताओंने यज्ञ का प्रचार किया। इस यज्ञमें ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाली वस्तुएंही यज्ञार्थ बर्ती जाती थीं। कोई कृत्रिम पदार्थ बर्ते नहीं जाते थे।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. हविष् = ग्रहण करनेयोग्य वस्तु, यज्ञके लिये योग्य पवित्र पदार्थ।
२. आज्यं = घृत, घी।
३. इध्मः = जलने की लकडी, समिधा।

यजुर्वेद वा० संहिता में यह मंत्र १४ वां है। पाठ ऐसाहि है। अथर्ववेद में यह मन्त्र १० वां है। सामवेदमें पुरुषसूक्त के केवल ५ ही मंत्र हैं। अतः इस मन्त्रसे आगेके मन्त्र सामवेद में नहीं हैं।

(यत्) When (देवाः) the deities (यज्ञं अतन्वत) prepared their sacrifice (हविषा) with offering (पुरुषेण) of manifestations of the universal Being, (अस्य) its (आज्यं) melted butter was (वसन्तः) spring, (हविः) holy oblation was (शरत्) autumn and (इध्मः) the wood was (ग्रीष्मः) summer.

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजंत साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

पदानि—तं। यज्ञं। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषं। जातं। अग्रतः। तेन। देवाः। अयजंत। साध्याः। ऋषयः। च। ये ॥७॥

अन्वयः— अग्रतः जातं तं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्र औक्षन्। तेन देवाः साध्याः ये च ऋषयः ते अयजन्त ॥६॥

अर्थ— वे (अग्रतः जातं) सबसे प्रथम प्रकट हुए (तं यज्ञं पुरुषं) इस यज्ञस्वरूपी परमात्माको (बर्हिषि) मानसयज्ञमें (प्रौक्षन्) संकल्पित करते रहे। (तेन) उससे हि (देवाः साध्याः ऋषयः) देव, साध्य और ऋषि (ते) ये सब (अयजन्त) यज्ञ करते रहे।

भावार्थ— परमात्मा का जो एक अंश विश्वके विविध रूपोंमें प्रकट हुआ था, उसी को यज्ञ करनेके लिए देव, साध्य और ऋषिलोग लिया करते थे। मानसिक संकल्पसे ही यह यज्ञ होता था। यज्ञके क्रियाकलाप संकल्प मात्र थे।

इस प्रारंभिक यज्ञ में संकल्प हि मुख्य था। संपूर्ण विश्वरूपोंमें परमात्मा का एक अंश प्रकट हुआ। इसी को लेकर संकल्पसे ही यह यज्ञ होता था। परमात्मा की उपासना परमात्मासे उत्पन्न विश्वान्तर्गत पदार्थोंके समर्पणसे ही होती थी। यही (यज्ञेन) आत्मासे आत्माद्वारा (यज्ञं) आत्माकी (अयजन्त) उपासना है।

अथर्वपाठ।

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये॥ (अथर्व० १९।६।११)

अर्थ— (अग्रशः जातं तं पुरुषं) प्रारंभमें प्रकट हुए उस पुरुषको (प्रावृषा प्रोक्षन्) वृष्टिद्वारा प्रोक्षण करके, साध्य, वसु और जो देव थे, वे (तेन अयजन्त) उसीके साधनसे उसीका यजन करते थे।

यज्ञपुरुष से सब सृष्टि उत्पन्न हुई, अतः सृष्टि परमात्मा का ही रूप है। इस विश्वात्मा से हि परमात्मा का यज्ञ किया जाता था।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ बर्हिष् = मानसयज्ञ, कुश, दर्भ।
२ साध्यः = साधन करनेवाले, साधक।

३ ऋषिः = कवि, मन्त्रपति, मन्त्रद्रष्टा ।
४ देवः = सूर्यचन्द्रादि देवतागण, ज्ञानी जन ।

(ते) They (प्रौक्षन्) consecrated (यज्ञं पुरुषं) their sacrificial Being, (जातं) manifested [in many forms] (अग्रतः) in earliest times, (बर्हिषि) in their mental sacrifice; and (तेन) by Him alone (देवाः) the deities (साध्याः) sacrificers and (ऋषयः) seers (अयजन्त) made their sacrifice.

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८॥

पदानि— तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः । संऽभृतं । पृषत्ऽआज्यं । पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् । आरण्यान् । ग्राम्याः । च । ये ॥८॥

अन्वयः— तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् पृषदाज्यं संभृतम् । वायव्यान् आरण्यान्, ये च ग्राम्याः तान् पशून् चक्रे ॥८॥

अर्थ — (तस्मात्) उस (सर्वहुतः यज्ञात्) सर्व पवित्र यज्ञसे (पृषद्–आज्यं) दही और घी (संभृतं) बना है। तथा (वायव्यान्) वायु में संचार करनेवाले पक्षी, (आरण्यान्) अरण्यमें रहनेवाले पशु और (ये च ग्राम्याः) जो ग्राममें रहनेवाले पशु हैं, (तान् पशून्) उन सब पशुओंको भी (चक्रे) बनाया ॥८॥

भावार्थ— वह यज्ञपुरुष परमात्मा ही सबसे पवित्र और यजनीय है। उसके अंशसे उत्पन्न हुए विश्वान्तर्गत वस्तुओंके योग्य समर्पणसेहि उसका

यजन होता है। इस यज्ञसे दूध, दही, घृत आदि भोगके पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। ये पदार्थ गौ आदि पशुओं से प्राप्त होते हैं। ये पशु भी उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं। आकाशसंचारी सब पक्षी, जंगली पशु और गौ आदि ग्रामीण पशु ये सब उसी से उत्पन्न हुए हैं। सभी पदार्थ उसी परमात्माके एक अंशसे हुए हैं॥

अथर्ववेदमें यह मन्त्र १४ वाँ है।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

सर्वहुत् = सबका सर्वतः जिसमें हवन होता है। सबसे पूजनीय। परमात्मा की पूजा यज्ञ से की जाती है, परंतु यज्ञ में परमात्मा के अंश से बने विश्वान्तर्गत पदार्थहि बर्ते जाते हैं, इसलिए परमात्मा की पूजा परमात्मासेहि परमात्मा द्वारा होती है। यहां यज्ञकर्ता, यज्ञसाधन और यजनीय देव एक ही होता है। यह उच्चतम यज्ञ की कल्पना है। गीता में '**ब्रह्मार्पणं०**' (गीता० ४।२४) '**अहं क्रतु०**' (गीता० ९।१६) इन श्लोकोंसे यही यज्ञ दर्शाया है। इस परमात्माके पूर्ण यज्ञ से हि यह सब विश्व बना है।

२ **यज्ञः** = (देवपूजा–संगतिकरण–दानं) = पूज्यों की पूजा, सबकी एकता होने का उत्तम साधन और जनता का हित जिस सत्कर्म से होता है, उसका नाम यज्ञ है। परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वर।

(तस्मात्) From that (सर्वहुतः यज्ञात्) general Holy Sacrifice (पृषद् आज्यं) curds and ghee (सं भृतं) was gathered up. He (चक्रे) formed (तान् पशून्) the creaturs (वायव्यान्) of the air, and animals both (आरण्यान्) wild and (ये ग्राम्याः च) domestic, that live in villages.

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छंदांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

पदानि—तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। ऋचः। सामानि। जज्ञिरे। छंदांसि। जज्ञिरे। तस्मात्। यजुः। तस्मात्। अजायत ॥९॥

अन्वयः— तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे। तस्मात् छंदांसि जज्ञिरे। तस्मात् यजुः अजायत ॥९॥

अर्थ— उस सर्वपवित्र यज्ञपुरुष से (ऋचः) ऋग्वेदमन्त्र, (सामानि) सामगान, (जज्ञिरे) हुए। (छन्दांसि) छन्द अथवा अथर्ववेद (जज्ञिरे) हुआ और (यजुः) यजुर्वेद उसीसे (अजायत) हुआ है ॥३॥

भावार्थ— उस परमात्मा के अंशसे सब विश्व हुआ, उसमें ज्ञानी लोग भी उसीसे वन गये। यज्ञ भी प्रारंभ हुए। यज्ञ और ज्ञानी लोगों के द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकट हुए।

(तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) From that great general Sacrifice (ऋचः सामानि जज्ञिरे) Riks and Samans were produced and (तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे) from it charms (of Atharva veda) were produced (तस्मात् यजुः अजायत) and from it Yajus were also produced.

तस्मादश्वा अजायंत ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

पदानि— तस्मात् । अश्वाः । अजायंत । ये । के । च । उभयादंतः । गावः । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः । अजावयः ॥१०॥

अन्वयः— तस्मात् अश्वाः अजायन्त । ये के च उभयादतः। तस्मात् ह गावः जज्ञिरे । तस्मात् अजावयः जाताः ॥१०॥

अर्थ— (तस्मात्) उसीसे (अश्वाः) अजायन्त घोडे उत्पन्न हुए। (ये के च उभयादतः) जो कोई दोनों ओर दांतवाले हैं वे भी उसीसे हुए । (तस्मात् गावः ह जज्ञिरे) उसीसे गौवें भी उत्पन्न हुईं । (तस्मात् अजावयः जाताः) उसीसे बकरीयां और भेड भी उत्पन्न हुए ॥१०॥

भावार्थ— सब सृष्टि और अन्तर्गत सब पदार्थ उसी परमात्मा के एक अंश से उत्पन्न हुए।

(तस्मात्) From Him (अश्वाः अजायन्त) horses and those (ये के च उभयादतः) that have got two rows of teeth, were born; (तस्मात्) from Him (गावः ह जज्ञिरे) cows were generated, and (तस्मात्) from Him (अजावयः जाताः) goats and sheep were born.

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

पदानि— यत् । पुरुषं । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् । मुखं । किं । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरू इति । पादौ । उच्येते इति ॥११॥

अन्वयः– यत् पुरुषं वि-अदधुः, (तं) कतिधा वि-अकल्पयन् अस्य मुखं किं? कौ बाहू? कौ ऊरू? कौ पादौ उच्येते? ॥११॥

अर्थ—(यत्) जब (पुरुषं) इस पुरुष की (विअदधुः) विशेष रीतिसे धारणा की गयी, तब उसकी (कतिधा) कितने प्रकारोंसे (वि-अकल्पयन्) कल्पना की गयी थी? (अस्य मुखं किं) इसका मुख क्या है, (कौ बाहू) इसके बाहू कौन हैं. (कौ पादौ उच्येते) दोनों चरण कौन कहलाते हैं?

भावार्थ—जिस पुरुष का वर्णन किया गया, उसके मुख, बाहू, ऊरू और पांव कौन कौन हैं?

(यत्) When they (व्यदधुः) described the (पुरुषं) universal Being, in (कतिधा व्यकल्पयन्) how many parts did they conceive Him? (अस्य मुखं किं) What did They call His mouth? (कौ बाहू) His arms? (कौ ऊरू) His thighs? and (पादौ कौ उच्येते) His feet?

अथर्ववेद का पाठ।

'मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते।'

(अथर्व० १९।६।५)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥



पदानि— ब्राह्मणः । अस्य । मुखं । आसीत् । बाहू इति । राजन्यः । कृतः । ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्ऽभ्यां । शूद्रः । अजायत ॥१२॥

अन्वयः— ब्राह्मणः अस्य मुखं आसीत् । राजन्यः (अस्य) बाहू कृतः । यत् वैश्यः तद् अस्य ऊरू । पद्भ्यां शूद्रः अजायत ॥१२॥

अर्थ— ब्राह्मण इसका मुख है । (राजन्यः) क्षत्रिय इसके (बाहू कृतः) बाहू किये गये हैं । (यत् वैश्यः) जो वैश्य हैं (तत् अस्य ऊरू) वे इसकी जंघाएँ हैं और इसके (पद्भ्यां) पावोंके लिये (शूद्रः अजायत) शूद्र हुआ है ॥१२॥

भावार्थ— इस परमात्मा के मुख, बाहू, ऊरू और पांव क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण हैं । यही चातुर्वर्ण्यमय जनतारूपी नारायणहि सबका उपास्य देव है ।

अथर्वपाठ ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

(अथर्व० १९।६।६)

'ब्राह्मण इसका मुख हुआ, बाहू क्षत्रिय बन गया, मध्यभाग वह हुआ जो वैश्य है, और पांवोंके लिये शूद्र हुआ है।'

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. ब्राह्मणः = (ब्रह्म जानाति) ब्रह्मज्ञानी मनुष्य । ज्ञान प्रसार करनेवाले ।

२. राजन्यः = (मूर्धाभिषिक्तः) राज्य चलानेके कार्यमें नियुक्त क्षत्रिय। प्रजाका रक्षण करनेवाले वीर।

३. वैश्य = पशुरक्षा और खेती करनेवाले। व्यापारी और किसान।

४. शूद्र = कारीगर। सेवक।

५. मध्यं = मध्य भाग।

(ब्राह्मणः) The Brahmin (आसीत्) was (अस्य मुखं) His mouth. (राजन्यः) The Kshatriya (कृतः) was made of (बाहू) both of His arms. (यत् वैश्यः) The Vaishya became (तत् अस्य ऊरू) His thighs and (पद्भ्यां) from His feet (शूद्रः) the Shudra was (अजायत) born.

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

पदानि— चन्द्रमाः। मनसः। जातः। चक्षोः। सूर्यः। अजायत। मुखात्। इन्द्रः। च। अग्निः। च। प्राणात्। वायुः। अजायत ॥१३॥

अन्वयः— मनसः चन्द्रमाः जातः। चक्षोः सूर्यः अजायत। मुखात् इन्द्रः च अग्निः च। प्राणात् वायुः अजायत ॥१३॥

अर्थ— (मनसः) मनसे (चन्द्रमाः जातः) चन्द्र बना, (चक्षोः सूर्यः अजायत) आंखोंसे सूर्य हुआ। (मुखात्) मुखसे (इन्द्रः अग्निः च) इन्द्र और अग्नि बन गये और (प्राणात्) प्राणसे (वायुः अजायत) वायु उत्पन्न हुआ है ॥१३॥

भावार्थ— परमात्मा के मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे अग्नि और इन्द्र, और प्राणसे वायु बना। (अथवा ११ वें मंत्र के प्रश्नों के अनुसंधान से इसका आशय ऐसा होता है–) चंद्रमा इस प्रभु का मन है, सूर्य इसकी आंख है, इंद्राग्नी इसका मुख है और वायु इसका प्राण है।

यजुर्वेद-पाठ।

श्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ प्रा॒णश्च॒ मुखा॑द॒ग्निर॑जायत ॥ (वा०य० ३१।१२)

(श्रोत्रात् वायुः प्राणः च) इसके कानसे वायु और प्राण तथा मुखसे अग्नि हुआ है। (मंत्र ११ के प्रश्नों के अनुसंधान से इसका आशय यह है–) वायु ही प्राण और कान हैं और अग्निहि इसका मुख है। शेष मंत्र ऋग्वेदवत्ही है।

(चन्द्रमाः) The moon (जातः) was generated from (मनसः) His mind, (चक्षोः) and from His eyes the (सूर्यः अजायत) Sun was born; (इन्द्रः च अग्निः च) Indra and Agni were born from His (मुखात्) mouth and (वायुः) the wind (अजायत) was born from His (प्राणात्) breath.

नाभ्या॑ आसीद॒न्तरि॑क्षं शी॒र्ष्णो द्यौः सम॑वर्तत। प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिशः॒ श्रोत्रा॒त्तथा॑ लो॒काँ अ॑कल्पयन् ॥१४॥

पदानि– नाभ्याः। आ॒सी॒त्। अ॒न्तरि॑क्षं। शी॒र्ष्णः। द्यौः। सं। अ॒व॒र्त॒त। प॒त्ऽभ्यां। भूमिः। दिशः। श्रोत्रा॑त्। तथा॑। लो॒कान्। अ॒क॒ल्प॒य॒न् ॥१४॥

अन्वयः-- नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत् । शीर्ष्णः द्यौः सं अवर्तत । पद्भ्यां भूमिः । श्रोत्रात् दिशः । तथा लोकान् अकल्पयन् ॥१४॥

अर्थ—(नाभ्याः) नाभिसे (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (आसीत्) उत्पन्न हुआ, (शीर्ष्णः) सिरसे (द्यौः) द्युलोक (सं अवर्तत) उत्पन्न हुआ। (पद्भ्यां) पांवोंसे (भूमिः) पृथिवी, (श्रोत्रात् दिशः) कानों से दिशाएं उत्पन्न हुईं। (तथा) इसी तरह (लोकान्) अन्यान्य लोकों की (अकल्पयन्) कल्पना की गई है ॥१४॥

भावार्थ-- नाभि, सिर, पांव और कानों से क्रमशः अंतरिक्ष, द्यु, पृथ्वी और दिशाएं बनीं। (अथवा ११ वें मंत्रके प्रश्नोंके अनुसंधानसे ऐसा आशय होगा-) अंतरिक्ष इस प्रभु की नाभि है, द्युलोक सिर है, पृथ्वी इसके पांव है। और दिशाएं इसके कान है, तथा अन्य लोकलोकान्तर इसके अन्यान्य अवयव हैं ॥१४॥

(नाभ्यः) From His navel (अन्तरिक्षं आसीत्) mid-air was made, (द्यौः) the sky (सं अवर्तत) was fashioned (शीर्ष्णः from his head, (भूमिः) the Earth (पद्भ्यां) from His feet, and (श्रोत्रात्) from His ear (दिशाः) the regions. (तथा लोकान् अकल्पयन्) Thus they imagined the worlds in His body.

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पदानि— सप्त । अस्य । आसन् । परिऽधयः । त्रिः । सप्त । सम्ऽइधः । कृताः । देवाः । यत् । यज्ञं । तन्वानाः । अबध्नन् । पुरुषं । पशुम् ॥१५॥

अन्वयः— यत् यज्ञं तन्वानाः देवाः पुरुषं पशुं अबध्नन् अस्य सप्त परिधयः आसन् । त्रिः सप्त समिधः कृताः ॥१५॥

अर्थ— (यत्) जब (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ का प्रचार करनेवाले (देवाः) देवोंने (पुरुषं पशुं) परमात्मा रूपी सर्वद्रष्टा को अपने मानस यज्ञमें (अबध्नन्) बांध दिया अर्थात् अपने मनमें ध्यानसे स्थिर किया, उस यज्ञ की (सप्त परिधयः आसन्) सात परिधियां थीं और (त्रिः सप्त) इक्कीस–तीनगुणा सात– (समिधः कृताः) समिधायें बनायी थीं ।

भावार्थ— सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी परमात्मा को मनमें सुस्थिर करनेका यह मानस यज्ञ है । मनके अन्दर बुद्धि और बुद्धि के अन्दर यह आत्मा है । यही यज्ञ–पुरुष है, इसलिए इस यज्ञपुरुष के बुद्धि, मन, अहंकार, वासना, स्थूल देह, समाज (मानव–समष्टि), विश्व (स्थिरचर–समष्टि) ये सात इस यज्ञके परिधि हैं । ये सात कार्यक्षेत्रकी मर्यादाएं हैं । इस प्रत्येकमें सात्त्विक, राजस, तामस भावोंसे इक्कीस प्रकारके यज्ञसाधन होते हैं और उतने यज्ञ भी अनेक-विध होते हैं ।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. परिधिः = परिघ, आवरण, परिखा, घेर, दिवार, कीलेकी भित्ती ।

२. समित्= जलानेकी लकडी, यज्ञकी लकडी, अग्निमें जो लकडियाँ डालीं जाती हैं । ये सप्त वृक्ष की सूखी कडीयां होती हैं ।

३. पशुः= (पश्यति इति) द्रष्टा, जो केवल देखता है, जो बांधा जाता है। देवता। गौ आदि पशु। मनुष्यादि प्राणी।

(अस्य सप्त परिधयः आसन्) He had seven fencings [for his sacrifice], (त्रिः सप्त समिधः कृताः) thrice seven kinds of fuel were prepared, (यत्) then the Devas (यज्ञं तन्वानाः) offering sacrifice, (अवध्नन्) bound (पुरुषं पशुं) the Univeirsal Seer (in their mental sacrifice).

यज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्। ते ह॒ नाकं॑ महि॒मान॑ः सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥१६॥

पदानि- य॒ज्ञेन॑। य॒ज्ञं। अ॒य॒ज॒न्त। दे॒वाः। तानि॑। धर्मा॑णि। प्र॒थ॒मानि॑। आ॒स॒न्। ते। ह॒। नाकं॑। म॒हि॒मान॑ः। स॒च॒न्त॒। यत्र॑। पूर्वे॑। सा॒ध्याः। सन्ति॑। दे॒वाः ॥१६॥

अन्वयः- देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त। तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। ते महिमानः नाकं ह सचन्त। यत्र पूर्वे साध्या देवाः सन्ति ॥१६॥

अर्थ--(देवाः) देवोंने (यज्ञेन यज्ञं) यज्ञसेहि यज्ञदेवका (अयजन्त) यजन किया था। (तानि धर्माणि) वे विधि (प्रथमानि आसन्) सबसे प्रथम थे। (ते) वे देव (महिमानः) महत्त्वको प्राप्त करते हुए (नाकं सचन्त ह) स्वर्गको प्राप्त हुए। (यत्र) जहां (पूर्वे साध्याः देवाः) प्राचीन कालके साधक देव (सन्ति) पहुंचे थे॥१६॥

भावार्थ-- मुख्य यज्ञपुरुष परमात्मा है। उसका यजन देव करते रहे। उस यजन की सामग्री उन यज्ञकर्ताओंने वही ली कि जो उसी परमात्मा से सृष्टिरूप बनी थी। यही यज्ञके द्वारा यज्ञका यजन है। यह यज्ञ सब यज्ञोंमें मुख्य है। इस यज्ञ के कर्ता स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, जहां प्राचीन यज्ञकर्ता पहुंच रहते हैं।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **यज्ञः** = यज्ञपुरुष, परमात्मा, परब्रह्म। ईश्वर। जिसके लिये यज्ञ किया जाता है।

२. **यज्ञः** = परमात्मा से विराट् पुरुष और विराट् पुरुषसे सब सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यह परमात्मासे उत्पन्न होने के कारण इसका भी नाम 'यज्ञ' है। इस साधन से यजन किया जाता है। यज्ञका साधन।

३. **प्रथम**= मुख्य, पहिला। प्रसिद्ध।

४. **नाक**= (न+अ+क) जहां असुख नहीं, जहां केवल सुख ही सुख है।

(देवाः) Devas (अयजन्त) honoured (यज्ञं) the Holy One (यज्ञेन) by their sacrifice. (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) These were the earliest holy ordinances. (ते महिमानः) The mighty ones (नाकं सचन्त) attained the heaven (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) where Sadhyas & the Devas of old, were dwelling.

अथर्ववेद में यह १६ वाँ मन्त्र इस सूक्त में नहीं है। परन्तु अ० ७।५।१ में है। परन्तु इस (१९।६।१६) के स्थानमें निम्नलिखित मन्त्र है-

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि॥

(अ० १९।६।१६)

अर्थ-- (बृहतः) इस बडे देव (पुरुषाद् अधि जातस्य) पुरुष--विराट पुरुष के अधिष्ठाता रूप बने हुए (राज्ञः सोमस्य देवस्य) राजा सोम देव परमेश्वरके (मूर्ध्नः) सिरसे (सप्त सप्ततीः) सात, और सत्तर (अंशवः) किरण अजायन्त प्रकट हुए हैं।

भावार्थ-- सबसे बडा एक देव है, उससे विराट् पुरुष प्रकट हुआ, उस विराट पुरुष पर एक अधिष्ठता भी उसीसे हुआ। इस सर्वाधिष्ठाता के सिरस्थानीय द्युलोकसे सात और सत्तर किरण चारों ओर फैले हैं और येही किरण सर्वत्र विश्वभर कार्य करते हैं।

यहां नारायण ऋषिके १६ मन्त्रोंका पुरुषसूक्त समाप्त होता है। अब इसका आशय देखना है।

पुरुषसूक्तका आशय।

परमात्माकी महत्ता।

(बृहतः देवस्य। अ० १९।६।१६) एक महान् देव है। (**ज्यायान् च पुरुषः**। ऋ० १०।९०।३) जो सबसे बडा है, उससे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। इसीको '**पुरुष, परमात्मा, परब्रह्म, महादेव**' आदि नाम हैं। (मं० ३)

(पादोऽस्य विश्वा भूतानि। ऋ० १०।९०।३) इस परमात्मा का एक अंशही ये सब भूत है अर्थात् वही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, तारा, भूमि आदि वस्तु मात्र के रूपमें प्रकट हुआ है। (**अस्य त्रिपाद् अमृतं दिवि**। ऋ० १०।९०।३) इसका शेष सब अमृत-स्वरूप द्युलोकमें विराजता है। (मं०३)



(त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुषः ॥४॥) अमृत पुरुष उच्च द्युस्थानमें सदा प्रकाश रहा है। परन्तु उसका (**पादः इह पुनः पुनः अभवत्**।) जो अंश विश्वके रूप में प्रकट होता है वह (पुनः) वारंवार विश्वका रूप धारण करके प्रकट होता है।

अर्थात् जैसा वह इस समय विश्वके रूपमें प्रकट हुआ है, वैसा हि भूतकालमें प्रकट हुआ था और उसी प्रकार आगे भविष्य कालमें भी विश्वरूपमें प्रकट होगा। (**पुरुषः साशन--अनशने विष्वङ् अभिव्यक्रामत्**) परमात्मा ही चेतन और जडके प्रत्येक रूपमें प्रकट हुआ है। (मं० ४)

(**पुरुषः एव इदं सर्वं**) यह परमात्माही यह सब अर्थात् इस विश्वमें जो दिखाई देता है, वह सब, है, (**यत् भूतं**) जो भूत कालमें प्रकट हुआ था, जो इस वर्तमान कालमें प्रकट हुआ है और (**यत् च भव्यं**) जो भविष्य कालमें प्रकट होनेवाला है, वह सब उसी परमात्माका रूप है, इसीलिये इसको **'विश्वरूप'** कहा जाता है। (मं० २) वह परमात्मा (**भूमिं अथो पुरः अति अरिच्यत**। मं० ५) प्रथम भूमि के रूपमें पश्चात् विविध शरीरोंके रूपोंमें प्रकट हुआ।

नारायणका स्वरूप।

चतुर्थ मन्त्रमें चेतन रूपोंमें परमात्मा प्रकट हुआ, ऐसा कहा, उसको स्पष्ट करते हैं—

(**सहस्रशीर्षा**) परमात्माको लाखों सिर, (**सहस्रबाहुः**। अथर्व०) लाखों बाहु, हात, (**सहस्राक्षः**) लाखों आंख, और (**सहस्रपात्**) लाखों पांव हैं। अर्थात् परमात्मा को हजारों, लाखों, करोडों सिर, आंख, नाक, कान, मुख, गले, छातियां, बाहु, हाथ, पेट, कमर, मध्यभाग (गुप्त इंद्रिय), जंघाएं, घुटने, पिंडरियां और पांव हैं। जितने प्राणी इस भूमण्डल में हैं, तथा अन्यान्य लोकलोकान्तरोंमें होंगे, वे सब उसी परमात्माके रूप होनेसे, उन प्राणियों के जितने अवयव हैं, वे सब उसी परमात्मा के अवयव कहे गये हैं। इसलिये सहस्रों सिर कहे हैं। ये सिर केवल सहस्र हि नहीं अपितु लाखों करोडों, अब्जावधि होंगे। (मं० १)

जिस पुरुषका आपने वर्णन किया (**कतिधा व्यकल्पयन्**) उस पुरुषकी आपने किस प्रकार कल्पना की है? (**अस्य मुखं किं**) इस पुरुषका मुख

क्या है ? (कौ बाहू) इस पुरुषके बाहू कौन हैं ? (का ऊरू) इसकी जंघाएं कौन हैं ? और (कौ पादौ उच्येते) भला इसके पांव कौन कहलाते हैं ? कृपा करके इस परमेश्वरके इन अवयवोंका वर्णन करके हमें इसका स्वरूप बताईये। (मं० ११)

(ब्राह्मणः अस्य मुखं) ब्राह्मण इसका मुख हैं, (राजन्यः अस्य बाहू) क्षत्रिय इसके बाहू हैं, (अस्य ऊरू वैश्यः) इसकी जंघाएं वैश्य हैं और (पद्भ्यां शूद्रः) पांवोंके लिये शूद्र हैं। इस तरह यह + नारायण सबका उपास्य देव है। (मं० १२)

जो परमात्मा मनुष्यों का उपास्य, सेव्य, पूज्य, सत्कर्तव्य, यजनीय है वह यही है, **ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र** रूपी नारायण ही सबका उपास्य है।

परमात्मा का
अमृतरूप
त्रिपाद् | विश्वं पादः
चेतन
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र

साथवाले चित्रमें परमात्मा अमृत स्वरूप और परमात्मा का विश्वरूप स्पष्ट करके बताया है। विश्वरूप भी उसीका है और चारों वर्णों में प्रकट होनेंवाला सब मानवीरूप भी परमात्माका ही रूप है। परमेश्वरका यह अर्थात् नारायण-स्वरूप चारों वर्णोंमें '**विभक्त**' अलगअलग टुकडे होकर नहीं प्रकट हुआ। परन्तु जैसे एक शरीर के सिर-बाहू-जंघा-पांव ये चार अवयव होते हैं, इनका परस्पर अखण्ड संबंध रहता है, तद्वत् '**ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र**' ये चार अवयव नारायण के अखंड एक देह के हैं। इसलिए जो सेवा करनी है, वह अखण्ड भाव से करनी चाहिये। कोई वर्ण अपने आपको अन्यों से सर्वथा पृथक् न समझे, परन्तु चारों वर्ण मिलकर हम सब परमात्मा के विराट्

+ नरों के समूह को '**नार**' कहते हैं। नरसमूह के रूप में यह होता है इस कारण इसको (**नार-अयन**) नारायण कहते हैं।

देह के अवयव हैं, ऐसा समझकर, अनन्यभाव से [कोई किसी को अन्य न मानता हुआ] अपने आपको उसकी सेवासे कृत कृत्य करे ।

विराट् पुरुष ।

परमात्मा (अनशन) भोजन न करनेवालों के रूपमें प्रकट हुआ यह चतुर्थ मन्त्र में कहा ,उसका स्पष्टीकरण करते हैं—

नारायण का मानवी स्वरूप बताया, अब उसीका विश्वरूप बताया जाता है । चन्द्रमा उस परमात्मा का मन है, सूर्य उस की आंखें हैं, अग्नि उसका मुख है, वायु उसका प्राण है, नाभि अन्तरिक्ष है, द्युलोक शिर है, भूमि पांव हैं, और इसी तरह अन्य लोकलोकान्तरोंको परमात्मा के शरीर के अन्यान्य अवयवों के स्थानपर आप कल्पना करिये । (मं० १३।१४)

परमात्माका अमृत स्वरूप — विश्व —

सिर= द्यौः, नक्षत्र, तारकागण,
आंख= सूर्य
मुख= अग्नि, इन्द्र,
कान= श्रोत्र= दिशा,
प्राण= वायु,
मन= चन्द्रमा, सोम,
उदर, नाभि, मध्य= अन्तरिक्ष लोक,
रुधिर, वीर्य= जल, समुद्र,
धमनियां= नदियां,
बाल= वृक्ष, वनस्पति, सोमादि औषधि,
पांव= भूमि ।

संक्षेपसे यह विराट् पुरुष उसी परमात्माके एक छोटेसे अंशसे हुआ है। इसीमें (भूमिं विश्वतो वृत्वा) भूमिके चारों ओर पूर्वोक्त हजारों मस्तकों-वाला नारायण हमारी सेवा स्वीकारनेके लिए विराज रहा (मं० १)। यह

सब मिलकर पर परमात्माका एक छोटासा अंश है। शेष अमृत-स्वरूप अखण्ड है। परमात्मा के अखण्ड अमृत-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उसकी अगाध अनन्त शक्ति को जानना चाहिए। परन्तु जो उसकी सेवा करनी है, वह पूर्वोक्त मानवसमाज की हि सेवा है। परमात्मा की सच्ची सेवा, उपासना अथवा यजन यही है।

यज्ञपुरुष, यज्ञदेव, यज्ञ ये सब इसीके नाम हैं। इसीसे आरण्यक वन्य सिंहव्याघ्रादि पशु, तथा ग्रामीण गौ, बैल, घोडा, बकरी, मेंढी आदि पशु तथा सब प्रकारके पक्षी (**वायव्यान्**) जो वायु में अन्तरिक्षमें संचार करते हैं, वे सब उत्पन्न हुए। (मं० ८;१०)

गौ आदि घरेलु पशु उत्पन्न होनेपर उनसे दूध, दूधसे दहि, दहीसें मख्खन मख्खनसे घी, आदि अनेक पदार्थ बनें। (मं० ८)

पृथ्वीपर सूर्यकिरण आदि पडनेसे वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि ऋतु हुए और प्रत्येक ऋतुमें विविध वस्तुओं की सृष्टि होने लगी। वसंत ऋतु में फूल और फल, वर्षासे खेती, शरद् में धान्य, ऐसी अनन्त वस्तुओं की उत्पत्ति होने लगी और इन वस्तुओं के समर्पण से यज्ञ होने लगे। (मं० ६-८) चार वर्णरूपी नारायण की सेवा उक्त निसर्गनिर्मित वस्तुओं के समर्पण से शुरू हो गयी।

यह सब यज्ञीय वस्तुमात्र उसी परमात्मा के अंशसे ही उत्पन्न होने के कारण ये सब पदार्थ पृथक् दीखने पर भी स्वरूपतः अथवा मूलतः परमात्म-रूप, यज्ञपुरुषरूप किंवा यज्ञरूपहि हैं। क्योंकि **पुरुष एव इदं सर्वं** (मं० २) परमात्मा ही यह सब है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र रूपी सेव्य देव भी वही है, और जिन वस्तुओंके समर्पण से उसकी सेवा करनी है, वह भी उसीका स्वरूप है। इसलिए कहा है कि (**पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत**। मं० ६) परमात्मारूपी हविर्द्रव्य से ही यज्ञ किया जाता है। **यज्ञकर्ता, यज्ञीय द्रव्य हवि, यज्ञ और यजनीय देव** यह सब शब्दों में विविधता दीखने पर भी

वस्तुतः मूलतः स्वरूपतः एकही परमात्माके ये सब रूप हैं।

महावाक्य।

इस पुरुषसूक्त में **'पुरुष एवेदं सर्वं'** (मं० २) परमात्मा ही सब कुछ है, परमात्मा ही सब विश्व के अनन्त रूपोंमें प्रकट हुआ है, यह महावाक्य है। वेद का सब सार इसमें समाया है। इसकी कसौटी से सब मानव-धर्मों की परीक्षा होती है, मनुष्य का कर्तव्य इसी महावाक्य से निश्चित होते हैं। अतः पाठक इसका अच्छी तरह मनन करें। यही वेद का सर्वस्व है। इसको कभी न भूलें, इसके अर्थ के विषय में कभी भ्रम में न पडे। यदि संदेह हुआ तो पद-पदार्थ-पूर्वक इसका अर्थ प्राप्त करके मननपूर्वक अपनी शंका दूर करें। परन्तु महावाक्य को न भूलें। अथवा महावाक्यको खींचातानी द्वारा न मरोडें। इस विषय में सावध रहें।

वेदोंकी उत्पत्ति।

इसी यज्ञपुरुष से ऋचा, साम, और यजु की अर्थात् चारों वेदों की उत्पत्ति हुई है, देखिए—

परमात्माका अमृत स्वरूप	विश्व	—ब्राह्मण= वसिष्ठ, अंगिरा, आदि ब्रह्मर्षि	ये ही वेद-मंत्रों के द्रष्टा ऋषि चारों वेदों में हैं, इनके कुल, वंश, इनके
		—क्षत्रिय=विश्वामित्र,पुरुरवा आदि राजर्षि	
		—वैश्य	
		—शूद्र= कवलऐलूषादि ऋषि	

नामोंसेहि वेदमन्त्रोंमेंहि दर्शाये है।

परमात्माके एक अंशसे सब विश्व, सब मानव, सब मंत्रद्रष्टा ऋषि हुए हैं। और इन ऋषियोंके अंतःकरणों में यह मंत्ररूपी ब्रह्म प्रकट हुआ है।

सुख और आनन्द ।

(अन्नेन प्राप्नोति । मं० २) जो अन्नसे अर्थात् जो भोगोंसे प्राप्त होता है, वह भोगसुख है, यह बाह्य वस्तुओंपर अवलंबित है । परन्तु दूसरा (अमृतत्वं) अमरत्व है, जो परमात्मा की सेवासे मिलता है, वह (भोगसुखं अतिरोहति) भोगोंसे प्राप्त होनेवाले सुख से कई गुणा श्रेष्ठ आनंद है। यह आनंद परमात्माकी (पुरुष एव इदं सर्वं) सर्वभावसे, अखण्डभावसे सेवा करनेसेहि प्राप्त होता है । भोगोंसे प्राप्त होनेवाला सुख खण्डभाव से मिलता है, परन्तु यह आनंद अखण्डभावसे, अनन्यभावसे अर्थात् सर्वभावसे सेवा करने सेहि मिलता है। जो पाठक अपने आपको कृतकृत्य करना चाहते होंगे, उनको यही मार्ग ठीक तरह समझनेका यत्न करना चाहिये और आचरण करना चाहिए ।

उक्त उपदेश अत्यंत रहस्यमय है, इसलिये एक उदाहरण देकर समझा देते हैं । देखिए, राष्ट्र में रहनेवाले सब लोग जब अपने राष्ट्र को दूसरों से पृथक् मानेंगे और दूसरोंका नाश करके अपनी उन्नति करनेके मार्ग से प्रयत्न करेंगे, तब परस्पर राष्ट्रों का संघर्ष बढ जायगा। जैसा इस समय युरोप में हो रहा है, प्राचीन कालमें असुर, रावण, कौरव आदि इसके उदाहरण हैं ।

पर जब सब मानवों को परमात्मा नारायण का अखण्ड स्वरूप मानकर उसकी सेवा करके, मानवों के हितके लिये आत्मसमर्पण करना अपना धर्म है, ऐसा वैदिक धर्म का सिद्धांत इस भूमण्डलपर सब मानव सर्वत्र आचरण में लाने लगे, तब सब राष्ट्र परस्पर सहाय्यकारी होंगे, सब एक दूसरों के हितचिंतक बनेंगे, तब परमात्मा की अखण्ड और अनन्य सेवा होगी और सर्वत्र शांति स्थापन होगी, और सबका कल्याण होगा ।

अनन्य-भावसे उपासना और अन्य-भावसे उपासनामें यही भेद है । यही धर्म और अधर्म का मूल हेतु है ।

विराट् और उसका अधिष्ठाता।

परमात्माके अल्प अंशसे **(तस्मात् विराट् अजायत। मं० ५)** सूर्य चन्द्र आदि विश्वव्यापी विराट् पुरुष--विश्वपुरुष--उत्पन्न हुआ। **(विराजः अधि पुरुषः। मं० ५)** इस विराट् पुरुषपर, इस विश्वपर, एक अधिष्ठाता उत्पन्न हुआ, जो इसके अन्दर की सब व्यवस्था देखता है। इस विराट् पुरुष से, इस अधिष्ठाता से, अर्थात् इन दोनोंसे मूल परमात्मा **(ज्यायान् पुरुषः। मं० ३)** बहुतही महान् है। क्योंकि यह सब विश्व उसके एक अल्प अंशसेहि उत्पन्न हुआ है, अतः अंशसे अंशी अधिक बडा होनाही चाहिये।

यज्ञ।

परमात्माके अंशसेहि विश्व, मानवसमाज, प्राणीसमूह, स्थिर--चर--समूह, वृक्षवनस्पति, समिधा, दुग्धघृतादि पदार्थ, मन्त्र (चार वेद), यज्ञविधि, यज्ञ इन सबकी उत्पत्ति हुई। मानवसमाजमें ब्राह्मण--क्षत्रिय--वैश्य--शूद्र संमिलित हैं। ये सब बाह्यतः विभिन्न दीखते हैं, तो भी मूलतः अभिन्न अर्थात् एक ही हैं। यज्ञका यह एकत्व का भाव जानना चाहिए। इस विषयके भगवद्गीता के श्लोक यहां देखने योग्य है--

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (भ० गी० ४।२४)
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ (भ० गी० ९।१६)

'अर्पण, हवि, अग्नि, हवनकर्म, हवनकर्ता यह सब ब्रह्म है। क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषधि, मन्त्र, घृत, अग्नि, आहुति यह सब (अहं) मै स्वयंही हूं।' यहां के ब्रह्म अथवा (अहं) मैं के स्थानपर परमात्मा, पुरुष, नारायण ये शब्द रखने से पुरुषसूक्त का आशय स्पष्टरूप से ध्यान में आ सकता है। इस पुरुषसूक्तमें सबकी एकता अति स्पष्ट रीतिसे दर्शायी है।

सप्त मर्यादा ।

आत्मा

१ बुद्धि

२ मन

३ अहंकार

४ वासना

५ स्थूल देह

६ समाज

७ विश्व

(सप्त अस्य परिधयः । मं० १५) ये सात मर्यादाएं इस सत्य सनातन यज्ञ की हैं। हमारे प्रत्येक कृत्यका, प्रत्येक कर्म का संबंध इन सात मर्यादाओं से सदा आता है, इसलिए हरएक साधक को इनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

प्रत्येक साधक अपने कर्म का इन सात क्षेत्रों में होनेवाला परिणाम देखे और उतनी जिम्मेवारीके साथ अपना कर्म करे। यज्ञविधिके अनुसार प्रमाद न करते हुए जो कार्य होंगे, वे ही इन सातों परिधियोंमें हितकारी सिद्ध होंगे।



यज्ञ से यज्ञ का यजन करना चाहिये। (**यज्ञेन यज्ञं अयजन्त**। मं० १६) मूलतः सब यज्ञसाधन एक कैसे हैं, यह पूर्वस्थलमें दर्शा दिया है। (**प्रथमानि धर्माणि**) ये यज्ञविधिहि मुख्य हैं। सात परिधी का ज्ञान प्राप्त करना और सर्वभाव से यज्ञ करना यह श्रेष्ठ यज्ञ–सिद्धि का साधन है। और इसी प्रकार के यज्ञ से (**नाकं सचन्त**) स्वर्गधाम की प्राप्ति होती है।

पुरुषसूक्त का यह आशय है। इस दृष्टि से जो पाठक इस पुरुषसूक्तका मनन करते रहेंगे, और इस तरह से अपना सब जीवन यज्ञरूप बनावेंगे, वेही कृतकृत्य होंगे।

इसके आगे **उत्तर नारायण** ऋषि के छः मन्त्र हैं, उनका विवरण अब करते हैं।

उत्तरनारायण ऋषिः। देवता–आदित्यः। त्रिष्टुप्; २०, २१ अनुष्टुप्॥

अ॒द्भ्यः संभृ॑तः पृथि॒व्यै रसा॑च्च वि॒श्वक॑र्मणः समव॑र्त॒ताग्रे॑। तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रू॒पमे॑ति तन्मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वमाजा॑न॒मग्रे॑॥१७॥

पदानि— अ॒द्भ्यऽइत्यत्ऽभ्यः। सम्भृ॑त॒ऽइति सम्ऽभृतः। पृ॒थि॒व्यै। रसा॑त्। च॒। वि॒श्वक॑र्म॒णऽइति वि॒श्वऽक॑र्मणः। सम्। अव॑र्तत। अग्रे॑। तस्य॑। त्वष्टा॑। वि॒द॒धदिति॒ वि॒ऽदध॑त्। रू॒पम्। ए॒ति॒। तत्। मर्त्य॑स्य। दे॒व॒त्वमिति॑ दे॒व॒ऽत्वम्। आ॒जान॒मित्या॒ऽजान॑म्। अग्रे॑॥१७॥

अन्वयः—अद्भ्यः (रसः) संभृतः। (तस्मात्) रसात् पृथिव्यै अग्रे विश्वकर्मणः समवर्तत। तस्य रूपं विदधत् त्वष्टा अग्रे एति। तत् मर्त्यस्य आजानं देवत्वम् ॥१७॥

अर्थ— (अग्रे) सबसे प्रथम (अद्भ्यः) जलों से सारभूत रस (सं-भृतः) इकठ्ठा हुआ। उस (रसात्) सारभूत अंशसे (पृथिव्यै) पृथ्वी की रचनाके लिए (विश्व-कर्मणः) विश्वकर्माके नियम से (सं अवर्तत) सम्यक् मीलन हुआ, पोषण प्राप्त हुआ। (तस्य रूपं) उसका रूप (विदधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) रूपोंका निर्माता देव (अग्रे एति) आगे चलता है। (तत्) वही (मर्त्यस्य) मरणधर्मा मनुष्य का (आजानं देवत्वं) श्रेष्ठ देवत्व है ॥१७॥

भावार्थ-- जलों का सारभूत अंश इकठ्ठा होता है, वही पृथ्वीमें संग्रहित होकर सबकी पुष्टि करता है। ये सब अटल नियम विश्वकी रचना करनेवाले ईश्वरने बनाये हैं। इस पृथ्वीजलके संयोगसे अथवा पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके संयोगसे सबको रूप देनेवाले ईश्वरने सब पदार्थोंके रूप बनाये हैं। इसीसे यह विश्वरूपवान् हुआ है। पञ्चमहाभूतों के संमेलन में परमेश्वर की रचनाकुशलता मिलकर यह विश्वका रूप हुआ है। यह ज्ञान प्राप्त करनेसे मनुष्यको श्रेष्ठ देवत्व की प्राप्ति होती है। अर्थात् इस ज्ञानसे मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर की शक्ति देखता है और सर्वत्र प्रभुको प्राप्त कर मर्त्य का देव होता है।

मर्त्यको देवत्वकी प्राप्ति का हेतु इस मंत्रमें जो बताया है, वह यह है कि, वह पञ्चमहाभूतों में परमेश्वरकी कुशलताका प्रभाव देखे, और प्रभुकी सर्वत्र उपस्थिति जाने।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. रसः= सारभूत अंश।

२. विश्वकर्मा= विश्वका निर्माता। सब कर्म करनेवाला।

३. त्वष्टा= रूप बनानेवाला कारीगर। विश्वकी रचना करनेवाला। कारीगर।
४. आजानं= श्रेष्ठ, उच्च। ज्ञानमूलक श्रेष्ठता।

(अग्रे) In the beginning, the essence (संभृतः) was collected (अद्भ्यः रसात्) from the waters, by the wonderful process (विश्वकर्मणः) of the Creator of the universe. (सं अवर्तत) It was revolved (पृथिव्यै) for the benefit of the earth. (विदधत्) Shaping (तस्य रूपं) its form there of, (त्वष्टा) the Maker of forms (अग्रे एति) proceeds further; (तत्) that is (मर्त्यस्य) the mortal's (आजानं) higher (देवत्वं) Godliness.

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

पदानि– वेद। अहम्। एतम्। पुरुषम्। महान्तम्। आदित्यवर्णमित्यादित्यऽवर्णम्। तमसः। परस्तात्। तम्। एव। विदित्वा। अति। मृत्युम्। एति। न। अन्यः। पन्थाः। विद्यते। अयनाय ॥१८॥

अन्वयः– एतं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् पुरुषं अहं वेद। तं एव विदित्वा मृत्युं अति एति। अयनाय अन्यः पन्थाः न विद्यते ॥१८॥

अर्थ— (एतं) इस (महान्तं आदित्यवर्णं) बडे सूर्य के समान तेजस्वी और (तमसः परस्तात्) अन्धकारसे सदा परे रहनेवाले (पुरुषं) परमात्मा को (अहं वेद) मैं जानता हूं। (तं एव विदित्वा) उसही को जानकर साधक (मृत्युं अति एति) मृत्यु के परे पहुंचता है। इस (अयनाय) गति के लिये (अन्यः पन्थाः) दूसरा मार्ग (न विद्यते) नहीं है ॥१८॥

भावार्थ— सूर्य के सदृश तेजस्वी और जिसके पास अन्धेरा रह नहीं सकता, ऐसे परमात्मा को पूर्वोक्त स्वरूपमें जाननेसेहि साधक अमर होता है। इस साधनाके लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं।

परमात्माका एक अंश इस विश्वके रूपमें प्रकट होता है, सब मानवजाति, सब प्राणी तथा सब अन्य विश्व यह सब उसके उसी एक अल्प अंशके रूप हैं। परमात्माका शेष अमृतस्वरूप बहुत बडा है, पर विश्वरूपही साधकोंसे सेवा लेनेके लिए यहां प्रकट हुआ है। इस विश्वरूपमें साधक भी संमिलित हैं। परमात्मा की कारीगरीका प्रत्यय विश्वके हरएक स्थानमें आता है। उसको जानना, तथा अनन्य भावसे उसकी सेवा करनाही एकमात्र अमरत्वप्राप्तिका साधन है। मुक्तिका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

मन्त्रस्थ शब्दोंका अर्थ।

१. तमस् = अन्धकार, अज्ञान।
२. आदित्यवर्ण= सूर्यके सदृश तेजस्वी।
३. वेद= जानता हूं।
४. अयनं= गति, उच्च स्थिति।

(अहं वेद) I know (एतं) this (महान्तं पुरुषं) mighty Supreme Being, (आदित्य वर्ण) whose colour is like that of the sun, (तमसः परस्तात्) and who is beyond the reach

of darkness. He who (तं एव विदित्वा) knows Him (मृत्युं अति एति) leaves death behind him. (अन्यः पन्थाः न विद्यते) There is no other path than this (अयनाय) to travel upwards.

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा- स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

पदानि— प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः। चरति। गर्भे। अन्तः। अजायमानः। बहुधा। वि। जायते। तस्य। योनिम्। परि। पश्यन्ति। धीराः। तस्मिन्। ह। तस्थुः। भुवनानि। विश्वा ॥१९॥

अन्वयः— प्रजापतिः गर्भे अन्तः चरति। अजायमानः बहुधा विजायते। धीराः तस्य योनिं परि पश्यन्ति। तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥१९॥

अर्थ— (प्रजा-पतिः) प्रजाओंका पालन करनेवाला परमात्मा (गर्भे अन्तः) गर्भ के अन्दर (चरति) संचार करता है। अर्थात् (अ-जायमानः) वह परमात्मा कभी जन्म न लेनेवाला होता हुआ भी (बहु-धा) अनेक प्रकार की योनियोंमें (वि-जायते) विशेष प्रकारों से जन्मता है। (धीराः) ज्ञानी जनही (तस्य योनिं) उसके उत्पत्तिस्थानको (परि पश्यन्ति) देखते हैं। (तस्मिन्) उसीमें (ह) निश्चयसे (विश्वा भुवनानि) सब भुवन (तस्थौ) ठहरे हैं ॥१९॥

भावार्थ— परमात्मा विविध योनियोंमें जन्म लेता है। वह स्वयं अजन्मा होता हुआ भी विशेष रीतियों से अनेक योनियोंमें उत्पन्न होता है। [इसी रीतिसे उससे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादि मानव, सब प्रकारके पशुपक्षी, उत्पन्न होते हैं, ऐसा मंत्र ८-१२ तक इसी पुरुषसूक्तमें कहा है।] इस विशेष प्रकारकी उत्पत्ति को और उसकी शक्तिको बुद्धिमान् लोग जानते हैं। अज्ञ लोग उसके इस शक्ति को जान नहीं सकते। इसी परमात्मामें सब भुवन ठहरे हैं। अर्थात् इसके एक अंशसे उत्पन्न होकर उसीमें आश्रित होकर रहे हैं ॥१९॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **प्रजापतिः** = प्रजा-पालन करनेंवाला, परमात्मा, परमेश्वर।
२. **गर्भे** = गर्भ, स्त्री का गर्भाशय, जहां गर्भ रहता हैं।
३. **अजायमान** = अजन्मा, न जन्मनेवाला।
४. **विजायते**= विशेष रीतिसे उत्पन्न होता है, विशेष युक्तिसे जन्म लेता है।
५. **योनि** = उत्पत्तिस्थान, मूलस्थान।
६. **धीर** = बुद्धिमान्। ज्ञानी।
७. **भुवन** = लोकलोकान्तर, विश्व।

(गर्भे अन्तः) In the womb (चरति) moves (प्रजापतिः) the Protector of the universe, (अजायमानः) He who is never being born, (विजायते) is born (बहुधा) in many forms; (धीराः) the wise only (परिपश्यन्ति) see (तस्य योनिं) His womb. (तस्मिन्) In Him alone (तस्थुः) stand (विश्वा भुवनानि) all existing creatures & the worlds.

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

पदानि– यः । देवेभ्यः । आतपतीत्याऽतपति । यः । देवानाम् । पुरोहितऽइति पुरःऽहितः । पूर्वः । यः । देवेभ्यः । जातः । नमः । रुचाय । ब्राह्मये ॥२०॥

अन्वयः– यः देवेभ्यः आ तपति, यः देवानां पुरोहितः, यः देवेभ्यः जातः, रुचाय ब्राह्मये नमः ॥२०॥

अर्थ–– (यः) जो (देवेभ्यः) देवोंके लिये (आ तपति) तपता है, प्रकाशता है, (यः) जो (देवानां) देवोंका (पुरोहितः) अगुआ है, अग्रगामी है, (यः) जो (देवेभ्यः पूर्वः जातः) देवोंके पहिले से हि प्रकट है, उस (रुचाय ब्राह्मये नमः) प्रकाशमय ब्रह्मके अंशसे उत्पन्न हुए विश्वात्माके लिये हमारा प्रणाम है ॥२०॥

भावार्थ— जो प्रकाशनेसेहि सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव प्रकाशित होते हैं, जो सूर्यादि देवताओं का सब प्रकारसे हित करनेवाला नेता अथवा संचालक है, जो सूर्यादि देवोंके पूर्वसेहि विराजमान था, उस ब्रह्मके अंशसे उत्पन्न हुए विश्वात्माके लिये हम प्रणाम करते हैं ॥२०॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. **देवः**= सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवतागण ।

२. **पुरोहित**= अग्रगामी, नेता, चालक, पूर्ण हित करनेवाला, पुरोहित ।

३. **रुच**= प्रकाश से पूर्ण, तेजस्वी ।

४. **ब्राह्मिः**= ब्रह्मसे उत्पन्न । ब्रह्मके अंश से जो उत्पन्न हुआ ।

(यः) He who (आतपति) gives light and heat to (देवेभ्यः) all the deities, (यः देवानां पुरोहितः) Who is the foremost leader of all the deities, (यः) He who (देवेभ्यः पूर्वः जातः) was born even before all the deities, to Him, (रुचाय) the Light, (ब्राह्मये) born of Brahman (नमः) we revere.

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥२१॥

पदानि— रुचम् । ब्राह्मम् । जनयन्तः । देवाः । अग्रे । तत् । अब्रुवन् । यः । त्वा । एवं । ब्राह्मणः । विद्यात् । तस्य । देवाः । असन् । वशे ॥२१॥

अन्वयः— अग्रे ब्राह्मं रुचं जनयन्तः देवाः तत् अब्रुवन् । यः ब्राह्मणः त्वा एवं विद्यात् । तस्य वशे देवाः असन् ॥२१॥

अर्थ-- (अग्रे) प्रारंभमें (ब्राह्मं रुचं) ब्रह्म से उत्पन्न हुए प्रकाश को (जनयन्तः देवाः) उत्पन्न करनेवाले देव (तत् अब्रुवन्) ऐसी घोषणा करते रहे कि (यः ब्राह्मणः) जो ज्ञानी (त्वा एवं विद्यात्) तुझ परमात्मा को ऐसा विश्वरूपमें प्रकट हुआ जानेगा, (तस्य वशे) उसके वशमें (देवाः असन्) सब देव रहेंगे ॥२१॥

भावार्थ— ब्रह्मसे उत्पन्न हुए प्रकाश को अपने अन्दर लेकर जिन देवताओंने विश्वको प्रकाशित किया, उन्होंने निःसन्देह रीतिसे ऐसी घोषणा करके सबको कहा कि, **"जिसको परब्रह्म का एक अंश इस तरह विश्व के रूप में प्रकट हुआ है, इसका यथावत् ज्ञान होगा, उसीके वशमें सब देवताएं रहेंगी।"** अर्थात् उस ज्ञानीके आधीन रहकर सब देवतागण कार्य करेंगे, ऐसा सामर्थ्य उस ज्ञानी को प्राप्त होगा।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. **ब्राह्म**= ब्रह्म से उत्पन्न, परमात्मा से प्राप्त ।
२. **जनयन्**= उत्पन्न करनेंवाले ।
३. **ब्राह्मणः**= ब्रह्म का यथावत् ज्ञान जिसको है, ऐसा ज्ञानी ।

४. वशे= आधीन, वशमें।

(तत् अब्रुवन्) Thus spake (देवाः) the deities (अग्रे) at first, (रुचं जनयन्तः) as They spread the light (ब्राह्मं) taken from the Holy one, Brahman: "(ब्राह्मणः) the sage (यः विद्यात्) who may know (त्वा) Thee (एव) thus (असन्) shall have (देवाः) the deities (तस्य वशे) in his control."

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥२२॥

पदानि— श्रीः। च। ते। लक्ष्मीः। च। पत्न्यौ। अहोरात्रेऽइत्यहोरात्रे। पार्श्वे इति पार्श्वे। नक्षत्राणि। रूपम्। अश्विनौ। व्यात्तमिति विऽआत्तम्। इष्णन्। इषाण। अमुम्। मे। इषाण। सर्वलोकमिति सर्वऽलोकम्। मे। इषाण ॥२२॥

अन्वयः— श्रीः च लक्ष्मीः च ते पत्न्यौ। अहोरात्रे पार्श्वे। नक्षत्राणि रूपम्। अश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्! इषाण। अमुं मे इषाण। सर्वलोकं मे इषाण ॥२२॥

अर्थ— हे प्रभो! श्री और लक्ष्मी ये दो (ते पत्न्यौ) तेरी पत्नियां हैं, (अहोरात्रे) दिन और रात तेरे (पार्श्वे) दोनों ओर हैं, (नक्षत्राणि) ये तारागण (रूपं) तेरे रूपको प्रकट करते हैं, और (अश्विनौ) अश्विनी देव तेरा (व्यात्तं) फैला मुख है। हे (इष्णन्) प्रार्थना करने वाले साधक (इषाण) ऐसी इच्छा कर कि, हे प्रभो

(मे अमुं इषाण) मुझे यह चाहिये। (सर्वं लोकं मे इषाण) सब लोकों की प्राप्ति मुझे हो जाय ॥२२॥

भावर्थ— श्री और लक्ष्मी ये दो प्रभुकी स्त्रियों के समान सहचारिणियाँ हैं। दिनरात्र ये सदा पीठ में रहती हैं, सब तारागण प्रभुका प्रकाश फैलाते हैं, द्यु और पृथ्वी ये प्रभुके मुख हैं। यह सर्वव्यापी विश्वरूपी प्रभु सबका उपास्य है, इसको अपने चारों ओर देखो, आगेपीछे दोनों ओर, ऊपरनीचे सर्वत्र उसका साक्षात्कार करो। इसी के स्वरूप में अपने आपको देखो, जब आप विश्वरूपके साथ अपने आपका अभेद संबंध अनुभव करेंगे, तब विश्वरूप और आपका रूप ये दोनों एक हो जायगे और इसके साथहि आपका मृत्युभय हट जायगा। क्योंकि विश्वरूपके साथ आप परमात्माके रूप में संमिलित होंगे। जो कुछ करना है, वह इस निजभाव की स्थिरता ही करना है। सर्व-लोकप्राप्ति इसीका नाम है, यही आपकी इच्छा इस समय रहेगी।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. श्रीः = शोभा, ऐश्वर्य।
२. लक्ष्मीः = संपदा, धन।
३. व्यात्तं = खुला हुआ।
४. इष्णन् = इच्छा करनेवाला।
५. इषाण = इच्छा करो।

(श्रीः) Beauty & (लक्ष्मीः) fortune (ते पत्नीः) are Thy wives, (पार्श्वे) each side of Thee (अहोरात्रे) are day and night. (नक्षत्राणि) The constellations are (रूपं) Thy beautiful form; (अश्विनौ) the earth & sky are Thine (व्यात्तं) open jaws. O (इष्णन्) wishing fortune! (इषाण) wish (अमुं मे) "yonder world for me," (इषाण) wish (सर्वं लोकं मे) "that the Universe be mine."



उच्छिष्ट-ब्रह्मसूक्तम् ।

(अथर्व० ११।७।१)

अथर्वा । अध्यात्मं, उच्छिष्टः । अनुष्टुप्, ६ पुरोष्णिग्बार्हतपरा; २१ स्वराट्; २२ विराट् पथ्याबृहती।

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥१॥

पदानि– उत्ऽशिष्टे । नाम । रूपम् । च । उत्ऽशिष्टे । लोकः । आऽहितः । उत्ऽशिष्टे । इन्द्रः । च । अग्निः । च । विश्वम् । अन्तः । सम्ऽआहितम् ॥१॥

अन्वयः– उच्छिष्टे नाम च रूपं च । उच्छिष्टे लोकः आहितः । उच्छिष्टे इन्द्रः च अग्निः च । उच्छिष्टे अन्तः विश्वं समाहितम् ॥१॥

अर्थ-- (उच्छिष्टे) (उत्) ऊपर (शिष्टे) अवशिष्ट रहे हुए पर-ब्रह्ममें नाम और रूप रहा है । सब सूर्यादि (लोकः) लोकलोकान्तर उसी उच्छिष्ट में (आहितः) आश्रय पाये हैं। इन्द्र और अग्नि उच्छिष्ट में रहे हैं और सब विश्व उसी उच्छिष्ट के अन्दर स्थिर हुआ है ॥१॥

भावार्थ-- नाम रूप, सब लोकलोकांतर, इन्द्र अग्नि आदि देवतागण, तथा संपूर्ण विश्व उसीके आश्रयसे स्थिर हैं, जो ऊपर ऊर्ध्व भागमें सब विश्व निर्माण करने के बाद अपने निज स्वरूपमें अवशिष्ट रहा है ॥१॥

(उत्) ऊपर (शिष्ट) अवशिष्ट, बचा हुआ जो परमात्मा है, उसका नाम उच्छिष्ट है। पुरुषसूक्तमें कहा है कि एक अंशसे सब विश्व बना और शेष तीन भाग ऊपर द्युलोक में अवशिष्ट रहा है (पुरुषसूक्त, ऋ० १०।९०।३-४)। यह त्रिपाद् जो ऊपर (ऊर्ध्वः) अवशिष्ट है, उसका नाम है (उत्+शिष्ट) उच्छिष्ट। पुरुषसूक्तके समझनेपर इस सूक्तका विषय समझमें आ सकता है। सब विश्वके निर्माण होनेपर, अपने एक अंशसे संपूर्ण विश्वका निर्माण करके, जो अवशिष्ट रहा है, वह उच्छिष्ट परमात्मा या परब्रह्म है। अर्थात् इसीके आश्रयसे सब विश्व है, सब लोक हैं, सब देवता हैं, सब नामरूप भी इसी आश्रय से हैं, यह सब स्पष्ट हो सकता है। परमात्मा के चार भाग माने गये हैं, एक भागसे सब विश्व हुआ और शेष तीन भाग ऊपर रहे हैं। इस ऊपर रहे तीन भागोंका आधार एक अंशसे उत्पन्न हुए विश्वके लिये है।

(उच्छिष्टे) In the Remnant are set (नाम रूपं च) name and form, (उच्छिष्टे) in the Remnant (आहितः) is set (लोकः) the world; (उच्छिष्टे) within the Remnant both (इंद्रः अग्निः च) Indra and Agni are set and (विश्वं) every thing also (सामाहितं) is set (अन्तः) in It.

[The Remnant is that which we get after subtracting the universe– all the forms of the world of phenomena–all the manifestations of the Supreme Soul– from the Original One Supreme Being.]

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥२॥

पदानि— उत्ऽशिष्टे । द्यावापृथिवी इति । विश्वम् । भूतम् । सम्ऽआहितम् । आपः । समुद्रः । उत्ऽशिष्टे । चन्द्रमाः । वातः । आऽहितः ॥२॥

अर्थ— (उच्छिष्टे) ऊपर अवशिष्ट रहे परब्रह्ममें (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोक तथा (विश्वं भूतं) सब बना हुआ पदार्थ-मात्र (समाहितं) सुस्थिर हुआ है। इसी (उच्छिष्टे) अवशिष्ट परब्रह्ममें (आपः समुद्रः) जल और महासागर (चन्द्रमा वातः) चन्द्रमा और वायु (आहितः) स्थिर रहा है ॥२॥

भावार्थ— परमात्माके आश्रयसे सब विश्व रहता है ॥२॥

(उच्छिष्टे) In the Remnant (द्यावापृथिवी) heaven and earth, (विश्वं भूतं) all existence (समाहितं) is set together; (उच्छिष्टे) in the Remnant (आपः) the waters, (समुद्रः) the ocean, (चन्द्रमाः) the moon, (वातः) the wind (आहितः) is set.

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि॥३॥

पदानि— सन् । उत्ऽशिष्टे । च । उभौ । मृत्युः । वाजः । प्रजाऽपतिः । लौक्याः । उत्ऽशिष्टे । आऽयत्ताः । व्रः । च । द्रः । च । अपि । श्रीः । मयि ॥३॥

अर्थ—(उच्छिष्टे) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट परब्रह्ममें (सन् असन् च) सत् और असत् ये (उभौ) दोनों तथा (मृत्युः) मृत्यु, (वाजः) बल और (प्रजापति) प्रजाओंका पालनकर्ता रहे हैं। (उच्छिष्टे)

उसी ऊर्ध्व अवशिष्ट ब्रह्ममें (लौक्याः आयत्ताः) इन लोकलोकांतरसंबंधी सब वस्तुमात्र स्थिर रहा है, (व्रः च) स्वीकार करना और (द्रः च) विदारण करना, ये भी भाव उसी में हैं, तथा (मयि श्रीः अपि) मुझमें जो शोभा है, वह भी उसीसे है ॥३॥

(उच्छिष्टे) In the Remnant are (उभौ) both (सन्) Being and (असन् च) Non-being, as well as (मृत्युः) Death, (वाजः) Vigour, (प्रजापतिः) and the Protector of subjects. (लौक्याः) The worldly ones (आयत्ताः) are supported (उच्छिष्टे) in the Remnant, both (व्रः च) choosing and (द्रः च) destroying, and also (श्रीः) fortune (मयि) in me are set in It.

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः॥४॥

पदानि— दृढः । दृंहस्थिरः । न्यः । ब्रह्म । विश्वऽसृजः । दश । नाभिम् इव । सर्वतः । चक्रम् । उत्ऽशिष्टे । देवताः । श्रिताः ॥४॥

अर्थ— (दृढः) सुदृढ और (दृंहस्थिरः) सुस्थिर रहा हुआ (न्यः= नेता) नेता, (ब्रह्म) ज्ञान, और (विश्वसृजः दश देवताः) विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले दश देवता ये सब (उच्छिष्टे श्रिताः) ऊर्ध्व अवशिष्ट परब्रह्म के आश्रय से रहते हैं, (नाभिं सर्वतः चक्रं इव) नाभिके चारों ओर जैसा चक्र रहता है ॥४॥

(दृढः) The firm, (दृंहस्थिरः) fast & strong, (न्यः) leader, (ब्रह्म) the Knowledge and (विश्वसृजः) all-creating (दश) ten

(देवताः) deities (उच्छिष्टे श्रिताः) are fixed in the Remnant (चक्रं इव) as a wheel (नाभिं सर्वतः) about the nave.

इस मन्त्रमें **'विश्वसृजः दश देवताः'** विश्वकी रचना करनेवाले दस देवताओं का उल्लेख है। इसका मनन करनेके समय निम्नलिखित मंत्रभागों का विचार साथ साथ करना उचित है। **(१) भूत-कृतः ऋषयः।** अथर्व० ६।१०८।४; **(२) पूर्वे भूतकृत ऋषयः।** अथर्व० ६।१३३।५; १२।१।३९ **ऋषीणां भूतकृतां।** अथर्व० ६।१३३।४; **सप्त ऋषयो भूतकृतः।** अथर्व० ११।१।३;२४; **भूतकृतो विश्वरूपाः।** अथर्व० ३।२८।१; **भूतकृतः।** अथर्व० ४।३५।२; **भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु।** अथर्व० १९।१६।२; इनमें विश्वकी रचना करनेवाले ऋषि और देवताओंका वर्णन है। दस देवोंका उल्लेख निम्न लिखित मन्त्रोंमें है—

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥१०॥
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥

(अथर्व० ११।८)

'आदिकालमें देवोंसे दस देव हुए थे, उन पुत्रोंको–उन दस देवों को–स्थान देकर वे किस लोकमें रहने लगे? इन दस देवोंका नाम **(संसिचः)** सबको सम्यक् पवित्र करनेवाले ऐसा है। इन्होंने सब मरणधर्मवाले को सिंचन करके पवित्र किया और वे देव पुरुष में प्रविष्ट हुए।'

इस तरह दस देवोंका वर्णन अथर्ववेदमें है। ये दस देव विश्व की रचना करनेवाले हैं। तथा—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत् ॥

(अथर्व० ११।८।३)

"पूर्वकालमें देवों से दस देव साथ साथ उत्पन्न हुए। जो इनको प्रत्यक्ष जानेगा, वही उस (महत्) बडे ब्रह्म के विषयमें कहेगा।"

इतना कहकर दस देवों की गिनती अगले मन्त्र में की है—

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन्॥
(अथर्व० ११।८।४)

'प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाक् और मन ये दस देव हैं।' जो मानवशरीरमें आ कर वसे हैं। इनके ही पितृरूप देव विश्वमें हैं, वायु, सूर्य, दिक्, अग्नि, इन्द्र, चन्द्र आदि उनके नाम हैं।

इन मन्त्रों तथा इस तरह के अन्यान्य मन्त्रों का विचार यहां करना उचित है। ये सब देवतागण परमात्माके आश्रय से रहे हैं, यह तात्पर्य यहां समझना चाहिये।

ऋक्साम॒ यजु॒रुच्छि॑ष्ट उद्गी॒थः प्रस्तु॑तं स्तु॒तम्।
हि॒ङ्का॒र उच्छि॑ष्टे॒ स्व॒रः साम्नो॑ मे॒डिश्च॒ तन्मयि॑॥५॥

पदानि— ऋक्। साम॑। यजुः॑। उत्ऽशिष्टः॑। उ॒त्ऽगी॒थः। प्रऽस्तु॑तम्। स्तु॒तम्। हि॒ङ्ऽका॒रः। उत्ऽशि॑ष्टे। स्वरः॑। साम्नः॑। मे॒डिः। च॒। तत्। मयि॑॥५॥

अर्थ--(ऋक् साम यजुः) ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, तथा सामके (उद्गीथः) उच्च स्वर के गान, (प्रस्तुतं स्तुतं) प्रस्तोता के स्तवनके मन्त्र, स्तुतिके मन्त्र, यह सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट परब्रह्ममें है। इसी तरह (हिंकारः) हिंकार (साम्नः स्वरः) साम का स्वरमण्डल तथा (मयि मेडिः च तत्) मुझमें



जो आलापशक्ति है, वह सब (उच्छिष्टे) अवशिष्ट परमात्मामें ही है ॥५॥

(ऋक्) The Verse, (साम) the chant, (यजुः) the formula are (उच्छिष्टे) in the Remnant, also (उद्गीथः) the song, (प्रस्तुतं) introductory praise, (स्तुतं) praise, (हिंकारः) the sound 'Hing' is (उच्छिष्टे) in the Remnant, (स्वरः) the tone, (मेडिः) the ring (साम्नः) of the Sama chant (तत्) that is (मयि) in me is also in It.

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥६॥

पदानि— ऐन्द्राग्नम् । पावमानम् । महाऽनाम्नीः । महाऽव्रतम् । उत्ऽशिष्टे । यज्ञस्य । अङ्गानि । अन्तः । गर्भःऽइव । मातरि ॥६॥

अर्थ— (ऐन्द्राग्नं) इन्द्र और अग्नि के मन्त्र, (पावमानं) पवमान सोमके मन्त्र, (महानाम्नी = महाव्रतं) महानाम्नी नामक साममन्त्र, और महाव्रत करके जो सत्र नामक यज्ञका भाग है, वह (यज्ञस्य अंगानि) यज्ञ के सब अंग यह सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट परमात्मामें रहे हैं, (मातरि अन्तः गर्भ इव) जैसा माता के अन्दर गर्भ रहता है ॥६॥

(ऐन्द्राग्नं) That relating to Indra and Agni, (पावमानं) that relating to purifying Soma, (महानाम्नी) the great named Samans, (महाव्रतं) the great ceremony, are all (उच्छिष्टे) within the Remnant as (अंगानि) the members

of the (यज्ञस्य) sacrifice, (गर्भ इव) like an embryo (मातरि अन्तः) within a mother.

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥७॥

पदानि– राजऽसूयम् । वाजऽपेयम् । अग्निऽस्तोमः । तत् । अध्वरः । अर्कऽअश्वमेधौ । उत्ऽशिष्टे । जीवऽबर्हिः । मदिन्ऽतमः ॥७॥

अर्थ-- राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, (तत् अध्वरः) वह हिंसारहित यज्ञ, (अर्क–अश्वमेधौ) अर्क और अश्वमेध, (मदिन्तमः) आनन्द बढानेवाली (जीव-बर्हिः) जीवन देनेवाली औषधिविशेष ये सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट रहे परब्रह्ममें रहते हैं ।

राजसूयः = (राजा सूयते यस्मिन्) जिस यज्ञमें राजा निर्माण किया जाता है । यह क्षत्रिय का यज्ञ है ।

वाजपेयः = (स वा एष ब्राह्मणस्य चैव राजन्यस्य यज्ञः । तं वा एतं वाजपेयमित्याहुः) = यह वाजपेय यज्ञ ब्राह्मण और क्षत्रिय का है ।

अग्निष्टोमः= (अग्नि-स्तोम) अग्नि-प्रशंसारूप महायज्ञ ।

अध्वरः= (अ–ध्वरः) जहां हिंसा, कुटिलता, छलकपट नहीं है ।

अर्कः= (अग्निः) = अर्कसंज्ञक यज्ञ ।

अश्वमेधः= राष्ट्र–साम्राज्य–संरक्षण और संवर्धन जिसे होता है, ऐसा यज्ञ ।

मदिन्तमः= तृप्तिकर, आनन्द देनेवाला सोमयाग ।

जीवबर्हिः= जीवनवर्धक औषधि-प्रयोगसे होनेवाला यज्ञ ।

(राजसूयः) Royal consecration, (वाज-पेयः) Vigour-giving food and Drink, (अग्निष्टोमः) praise of fire, (अध्वरः) sacrifice without killing, (अर्कं अश्वमेधौ) fire, sun & horse-sacrifice, (जीवबर्हिः) living grass, (मदिन्तमः) the most delighting sacrifice are all (उच्छिष्टे) in the Remnant.

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥८॥

पदानि– अग्निऽआधेयम् । अथो इति । दीक्षा । कामऽप्रः । छन्दसा । सह । उत्ऽसन्नाः । यज्ञाः । सत्राणि । उत्ऽशिष्टे । अधि । सम्ऽ आहिताः ॥८॥

अर्थ-- (अग्न्याधेयं) अग्न्याधान, (अथो दीक्षा) और यज्ञ की दीक्षा, (छन्दसा सह कामप्रः) मन्त्रों के साथ होनेवाला, कामना पूर्ण करनेवाला यज्ञ, (उत्सन्नाः यज्ञाः) प्रचार में जो यज्ञ नहीं है अथवा जो ऊंचा उठानेवाले यज्ञ हैं, वैसे यज्ञ (सत्राणि) विविध प्रकार के सत्रयज्ञ, ये सब (उच्छिष्टे अधि समाहिताः) ऊर्ध्व अवशिष्ट परमात्मामें रहे हैं ॥८॥

(अग्न्याधानं) The establishing of a fire, (दीक्षा) the consecration, (काम-प्रः) the desire-fulfiller, (छन्दसा सह) that exists with metrical Verses, (उत्सन्नाः यज्ञाः) elevating sacrifices, (सत्राणि) sacrificial sessions, (अधि समाहिताः) are set together (उच्छिष्टे) in the Remnant.

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥९॥

पदानि– अग्निऽहोत्रम् । च । श्रद्धा । च । वषट्ऽकारः । व्रतम् । तपः । दक्षिणा । इष्टम् । पूर्तम् । च । उत्ऽशिष्टे । अधि । समऽआहिताः ॥९॥

अर्थ— अग्निहोत्र, (श्रद्धा) आस्तिक्यबुद्धि, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा, (इष्टं) इष्टियां, (पूर्तं) अन्नदान, कूपतडागादि परोपकारके कर्म (उच्छिष्टे अधि समाहिताः) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट परब्रह्ममें रहे हैं ॥९॥

वषट्कार= दानका सूचक शब्द है, (वसत्–कार) उत्तम प्रकारके निवास के लिये जो दिया जाता है, सत्कारयोग्य के सत्कार के लिये जो अर्पण किया जाता है।

(अग्निहोत्रं) Fire-offering, (श्रद्धा) faith, (वषट्कार) offering-exclamation, (व्रतं) the vow, (तपः) penance, [दक्षिणा] the sacrificial gift, [इष्टं] what is offered in sacrifice, [पूर्तं] what is bestowed [समाहिताः] are fixed [उच्छिष्टे अधि] in the Remnant.

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०॥

पदानि– एकऽरात्रः । द्विऽरात्रः । सद्यःऽक्रीः । प्रऽक्रीः । उक्थ्यः । आऽउतम् । निऽहितम् । उत्ऽशिष्टे । यज्ञस्य । अणूनि । विद्यया ॥१०॥

अर्थ-- (एकरात्रः) एक रात्री में होनेवाला यज्ञ, (द्विरात्रः) दो रात्रियों की अवधि में होनेवाला यज्ञ, (सद्यः क्रीः) तत्काल

एक बैठक में होनेवाला यज्ञ, (प्रक्रीः) प्रयत्न से होनेवाला यज्ञ, (उक्थः) प्रशंसारूप यज्ञ, ये सब (यज्ञस्य अणूनि) यज्ञ के भाग (विद्यया) ज्ञान के द्वारा (उच्छिष्टे ओतं निहितं) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट परब्रह्म में बुने गये और स्थिर हुए हैं ॥१०॥

(एकरात्रः) One-night sacrifice, [द्विरात्रः] the two-night, [सद्यः क्रीः] the same-day sacrifice, [प्रक्रीः] the elaborate sacrifice, (उक्थः) sacrifice by praise, [यज्ञस्य अणूनि) the minute things of the sacrifice, (विद्यया) by Knowledge (ओतं निहितं) are woven and placed (उच्छिष्टे) in the Remnant.

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञाः अमृते हिताः ॥११॥

पदानि— चतुः रात्रः । पञ्चऽरात्रः । च । उभयः । सह । षोडशी । सप्तऽरात्रः । च । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । ये । यज्ञाः । अमृते । हिताः ॥११॥

अर्थ— (चतूरात्रः) चार रात्रियोंसे समाप्त होनेवाला यज्ञ, (पञ्चरात्रः) पांच रात्रियोंमें होनेवाला यज्ञ, [षड्रात्रः] छः रात्रियों में होनेवाला यज्ञ [उभयः सह] पूर्वोक्त यज्ञोंके द्विगुणित रात्रियों में अर्थात् आठ, दस, बारह रात्रियोंमें होनेवाले यज्ञ, [षोडशी] सोलह स्तोत्रोंसे होनेवाला यज्ञ, [सप्तरात्रः] सात रात्रियोंमें होनेवाला यज्ञ [ये सर्वे] ये सब [अमृते हिताः यज्ञाः] अमृतमें

रहे यज्ञ, [उच्छिष्टात् जज्ञिरे] ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं।

इससे पूर्व मन्त्रोंमें 'यह सब उच्छिष्टमें स्थिर है', ऐसा कहा है, पर इस मन्त्रमें 'यह सब उच्छिष्टसे उत्पन्न हुआ,' ऐसा कहा है। उच्छिष्टसे उत्पन्न होकर उच्छिष्टमें रहा है, ऐसा अर्थ यहां और आगे भी समझना उचित है–

[चतूरात्रः] The four-night, [पञ्चरात्रः] the five-night, [षड्रात्रः] the six-night, [उभयः सह] of both kinds, together, [षोडशी] the one of sixteen, [सप्तरात्रः] and the seven-night sacrifices [जज्ञिरे] were born [उच्छिष्टात्] from the Remnant, [सर्वयज्ञाः] all the sacrifices [ये अमृते हिताः] which are connected with immortality.

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥१२॥

पदानि– प्रतिऽहारः। निऽधनम्। विश्वऽजित्। च। अभिऽजित्। च। यः। साह्नऽअतिरात्रौ। उत्ऽशिष्टे। द्वादशऽअहः। अपि। तत्। मयि ॥१२॥

अर्थ— [प्रतिहारः निधनं] सामगान का प्रारंभ और अन्त, [विश्वजित्] विश्वका विजय करनेका यज्ञ, [अभिजित् च यः] और जो चारों ओर जीतने का यज्ञ है, [साह्न-अतिरात्रौ] एक दिनमें होनेवाला, रात्री समाप्त होनेपर भी चलनेवाला ये दोनों यज्ञ, [द्वादशाहः] बारह दिनों में समाप्त होनेवाला यज्ञ, [मयि तत्] जो यज्ञ मुझमें-मेरी शक्ति से होनेवाले हैं, वे सब [अपि उच्छिष्टे] भी ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट रहे परब्रह्म में रहते हैं ॥१२॥

[प्रतीहारः] The beginning and [निधनं] the conclusion of Sama-songs, both [विश्वजित्] the all-conquering and [अभिजित् च यः] conquering on every side, [साह्न-अतिरात्रौ] the same-day and over-night sacrifices, [उच्छिष्टे] are in the Remnant, [द्वादशाहः] the twelve-day sacrifice, and also [मयि तत्] what is in me.

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥१३॥

पदानि— सूनृता । सम्ऽनतिः । क्षेमः । स्वधा । ऊर्जा । अमृतम् । सहः । उत्ऽशिष्टे । सर्वे । प्रत्यञ्चः । कामाः । कामेन । तातृपुः ॥१३॥

अर्थ—(सूनृता) सत्य भाषण, (संनतिः) फलकी उत्तम प्राप्ति, (क्षेमः) उत्तम सुरक्षा, (स्वधा) जिससे धारणा होती है, वह अन्न, (ऊर्जा) बलवर्धक अन्न, (अमृतं) अमृत अन्न, (सहः) शत्रुनाश करने का सामर्थ्य, (सर्वे कामाः) सब काम जो (कामेन तातृपुः) भोगसे तृप्ति देते हैं, वे सब के सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व अवशिष्ट परब्रह्म में (प्रत्यञ्चः) प्रत्येक रूप में आश्रित हुए हैं ॥१३॥

(सूनृता) True speech, (संनतिः) compliance, (क्षेमः) comfort, (स्वधा) self-supporting [food], (ऊर्जा) refreshment, (अमृतं) immortal (food that is not dead), (सहः) power [of resisting one's enemy], (सर्वे प्रत्यञ्चः) all are fixed (उच्छिष्टे) in the Remnant, and also the (कामाः) desires that are (तातृपुः) satisfied (कामेन) with desire.

**नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥१४॥**

पदानि— नव । भूमीः । समुद्राः । उत्ऽशिष्टे । अधि । श्रिताः । दिवः । आ । सूर्यः । भाति । उत्ऽशिष्टे । अहोरात्रे इति । अपि । तत् । मयि ॥१४॥

अर्थ— [नव भूमीः] नव खण्डात्मक पृथिवी, [समुद्राः] सब महासागर, [दिवः] द्युलोक ये सब [उच्छिष्टे] ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट ब्रह्ममें [अधि श्रिताः] स्थिर रहे हैं। यह [सूर्यः] सूर्य भी [उच्छिष्टे] ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट ब्रह्ममें आश्रय पाकर [आ भाति] प्रकाशता है, इसीसे [अहोरात्रे] दिन और रात होते हैं, [अपि तत् मयि] वह सब मुझमें रहे ॥१४॥

[नव भूमीः] Nine earths, [समुद्राः] oceans, [दिवः] skies, [अधि श्रिताः] are set [उच्छिष्टे] in the Remnant; [सूर्यः] the sun [आ भाति] shines [उच्छिष्टे] in the Remnant so also, [अहोरात्रे] day and night; [अपि] and [तत् मयि] what is in me, is also in It.

**उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥१५॥**

पदानि— उपऽहव्यम् । विषुऽवन्तम् । ये । च । यज्ञाः । गुहा हिताः । बिभर्ति । भर्ता । विश्वस्य । उत्ऽशिष्टः । जनितुः । पिता ॥१५॥

अर्थ-- (उपहव्यं) एक यज्ञ, (विषुवन्तं) गौओं का आना-एक यज्ञ, और (ये च यज्ञाः) जो यज्ञ (गुहा हिताः) बुद्धिके आश्रय से किये जाते हैं, उन सब यज्ञों को (उच्छिष्टः बिभर्ति) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट रहा हुआ परमात्मा धारण करता है, जो (विश्वस्य जनितुः) विश्वके उत्पादक का (पिता भर्ता) उत्पादक और पोषक है ॥१५॥

भावार्थ— विश्व का उत्पन्नकर्ता विराट् पुरुष है, इसका पोषण करनेवाला परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा के एक छोटेसे अंशसे यह विश्व निर्माण हुआ है। यह पिता का पिता सब का आधार है ॥१५॥

(उपहव्यं) The added oblation, (विषूवन्तं) the sacrifice (that collects the cows) and (ये च यज्ञाः) the other sacrifices (गुहा हिताः) are kept in secret, in the Remnant; (उच्छिष्टः) the Remnant (विश्वस्य भर्ता) the bearer of all & (जनितुः पिता) father of the generator of the world (बिभर्ति) bears all this.

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥१६॥

पदानि— पिता। जनितुः। उत्ऽशिष्टः। असोः। पौत्रः। पितामहः। सः। क्षियति। विश्वस्य। ईशानः। वृषा। भूम्याम्। अतिऽघ्न्यः ॥१६॥

अर्थ-- (उच्छिष्टः) ऊपर अवशिष्ट रहा परमात्मा (जनितुः) विश्व की उत्पत्ति करनेवाले विराट् पुरुष का (पिता) पिता है। और

(पौत्रः) उस के पुत्र का पुत्र जो जीव है, उस (असोः) जीव का अर्थात् प्राण का वही परमात्मा (पितामहः) पिता का पिता है। (सः) वह (विश्वस्य ईशानः) सब विश्वका ईश्वर होकर (क्षियति) रहता है, जैसा (अतिघ्न्यः वृषा) अति प्रबल बैल (भूम्यां) पृथ्वीपर रहा है ॥१६॥

भावार्थ— परब्रह्म ही पुरुषोत्तम या पुराणपुरुष अथवा पितामह है, सब का ईश्वर यही है। इसका पुत्र विराट् पुरुष ब्रह्माण्डदेही है, इसको जगत् का पिता कहिये। इसका पुत्र जीव है, यह प्राण धारण करता है। [पितामह, पिता और पुत्र ये तीन यहां दर्शाये हैं। पितामह बडा सामर्थ्यवान् है, उसीका वर्णन इस सूक्त में उच्छिष्ट शब्दसे किया है।]

(उच्छिष्टः) The Remnant is (जनितुः पिता) the father of the generator (of this Universe), His (पौत्रः) grandson is the breath. So He becomes the (पितामहः) grandfather of (असोः) this breath. (सः) He, (विश्वस्य ईशानः) the One Ruler of all, (क्षियति) dwells here just as (अतिघ्न्यः) an overpowering (वृषा) bull (भूम्यां) upon this earth.

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥१७॥

पदानि— ऋतम्। सत्यम्। तपः। राष्ट्रम्। श्रमः। धर्मः। च। कर्म। च। भूतम्। भविष्यत्। उत्ऽशिष्टे। वीर्यम्। लक्ष्मीः। बलम्। बले ॥१७॥

अर्थ— (ऋतं) सरलता, (सत्यं) सत्य (तपः) शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति, (राष्ट्रं) राज्यशासन, (श्रमः) प्रयत्न,

(धर्मः च) धर्म-शुभ गुण, (कर्म च) कर्मशक्ति, (भूतं) जो हुआ था, (भविष्यत्) जो होनेवाला है, तथा जो है, (वीर्यं) शौर्य, वीर्य, पराक्रम, (लक्ष्मीः) संपत्ति (बले बलं) बलवानों का जो बल है, वह सब बल (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट रहे परमात्माके आधार से रहता है।

(ऋतं) Righteousness, (सत्यं) truth, (तपः) penance, (राष्ट्रं) National power, kingsihp (श्रमः) toil, (धर्मः) virtue (कर्म च) action, (भूतं) what had been, (भविष्यत्) what will be, and what is now, (वीर्यं) heroism, (लक्ष्मीः) fortune, and (बले बलं) the strength that is found in the strong, all these are (उच्छिष्टे) in the Remnant.

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥१८॥

पदानि— सम्ऽऋद्धिः। ओजः। आऽकूतिः। क्षत्रम्। राष्ट्रम्। षट्। उर्व्यः। सम्ऽवत्सरः। अधि। उत्ऽशिष्टे। इडा। प्रऽएषाः। ग्रहाः। हविः॥१८॥

अर्थ— (समृद्धिः) धनसंपत्ति, (ओजः) शारीरिक शक्ति, (आकूतिः) संकल्प, (क्षत्रं) प्रजारक्षण का बल, (राष्ट्रं) राज्यशासनसामर्थ्य, (षट् ऊर्व्यः) छः बडी दिशाएं, (संवत्सरः) वर्षका समय, (इडा) वाणी, अन्न, (प्रैषाः) आज्ञाएं, (ग्रहाः) स्वीकार, ग्रहण करनेकी शक्ति, (हविः) हवन यह सब, (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व अवशिष्ट परमात्मा के आश्रयसे रहता है ॥१८॥

(समृद्धिः)Success, (ओजः) force, (आकूतिः) design, (क्षत्रं) dominion, or the power that protects the subjects. (राष्ट्रं) National power, Kingship, (षट् ऊर्व्यः) the six-wide [quarters], (संवत्सरः) the year, (इडा) speech, food, (प्रैषाः) orders, (ग्रहाः) holdings and (हविः) the oblation are (उच्छिष्टे अधि) in the Remnant.

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥१९॥

पदानि– चतुःऽहोतारः । आप्रियः । चातुः मास्यानि । निऽविदः । उत्ऽशिष्टे । यज्ञाः । होत्राः । पशुऽबन्धाः । तत् । इष्टयः ॥१९॥

अर्थ—(चतुर्होतारः) चार होतागणों के मन्त्र और कर्म, (आप्रियः) प्रिय, अग्नि और यज्ञ के सब साधन (चतुर्मास्यानि) चातुर्मास्य याग, (नीविदः) स्तुतिके अथवा निवेदन के मन्त्र, (यज्ञाः) सब यज्ञ, (होत्राः) होता आदि ऋषिगण, (पशुबन्धाः) जिनमें पशु बांधे जाते हैं, ऐसे याग, (तत् इष्टयः) सब प्रकार की इष्टियां (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व अवशिष्ट परमात्मामें रहते हैं ॥१९॥

(चतुर्होतारः) The four-priest sacrifice, (आप्रियः) the fire and sacrificial things, (चातुर्मास्यानि) the seasonal oblations, (निविदः) sacrificial instructions, (यज्ञाः) sacrifices, (होत्राः) invocations, (पशुबन्धाः) tyings of beasts, (तत इष्टयः) then the offerings are (उच्छिष्टे) in the Remnant.

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही॥२०॥

पदानि— अर्धऽमासाः । च । मासाः । च आर्तवाः । ऋतुऽभिः । सह । उत्ऽशिष्टे । घोषिणीः । आपः । स्तनयित्नुः । श्रुतिः । मही ॥२०॥

अर्थ— (अर्धमासाः च) आधा महिना, पक्ष, (मासाः च) महिने, (ऋतुभिः सह आर्तवाः) ऋतुओंके साथ वर्ष के विभाग, (घोषिणीः आपः) बडा शब्द करनेवाले जलप्रवाह, (स्तनयित्नुः) गर्जनेवाला मेघ, (श्रुतिः) शब्द, (मही) पृथ्वी यह सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्वभाग में अवशिष्ट परमात्मा के आश्रय से रहे हैं ॥२०॥

(अर्धमासाः च मासाः च) Both the half-months and months, (आर्तवाः) the year-divisions (ऋतुभिः सह) with seasons, (घोषणीः आपः) the noisy waters, (स्तनयित्नुः) the thunder, (श्रुतिः) the sound, (मही) and the earth are (उच्छिष्टे) in the Remnant.

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता॥२१॥

पदानि— शर्कराः । सिकताः । अश्मानः । ओषधयः । वीरुधः । तृणा । अभ्राणि । विऽद्युतः । वर्षम् । उत्ऽशिष्टे । समऽश्रिता श्रिता ॥२१॥

अर्थ— (शर्कराः) पथरीली बालू, (सिकता) बालू, (अश्मानः) पत्थर, (ओषधः) ओषधियां, (वीरुधः) लताएं, (तृणा) घास, (अभ्राणि) मेघ, (विद्युतः) बिजलियां, (वर्षं) वृष्टि ये सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व अवशिष्ट परमात्मा में (संश्रिताः श्रिताः) सम्यक् रीतिसे आश्रित हुए हैं ॥२१॥

(शर्कराः) Pebbles, (सिकताः) sand (अश्मानः) stones, (ओषधयः) herbs, (वीरुधः) plants, (तृणा) grasses, (अभ्राणि) clouds, (विद्युतः) lightenings, (वर्षं) rain (संश्रिताः श्रिताः) are set together (उच्छिष्टे) in the Remnant.

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्महं एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता॥२२

पदानि— राद्धिः । प्रऽआप्तिः । सम्ऽआप्तिः । विऽआप्तिः । महः । एधतुः । अतिऽआप्तिः । उत्ऽशिष्टे । भूतिः । च । आऽहिता । निऽहिता । हिता ॥२२॥

अर्थ— (राद्धिः) उत्तम सिद्धि, (प्राप्तिः) फलकी प्राप्ति, (समाप्तिः) कर्मकी संपूणता, (व्याप्तिः) विविध प्रकार का प्रचार, (महः) महत्त्व, (एधतुः) वृद्धि, (अत्याप्तिः) अधिक फलकी प्राप्ति, (भूतिः) वैभव की प्राप्ति, ये सब (उच्छिष्टे) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट परमात्मामें (आहिता, निहिता हिता) सुस्थिर हुए हैं ॥२२॥

(राद्धिः) The success, (प्राप्तिः) attainment, (समाप्तिः) obtainment, (व्याप्तिः) permeation, (महः) greatness,

(एधतुः) prosperity, (भूतिः) growth, (निहिता हिता आहिता) are placed in (उच्छिष्टे) the Remnant.

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२३॥

पदानि— यत् । च । प्राणति । प्राणेन । यत् । च । पश्यति । चक्षुषा । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः ॥२३॥

अर्थ—(यत् प्राणेन प्राणति) जो प्राणसे जीवित रहता है, (यत् च चक्षुषा पश्यति) और जो आंख से देखता है, वे सब (उच्छिष्टात् जज्ञिरे) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट रहे परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं । (सर्वे दिविश्रितः देवाः) सब द्युलोक के आश्रय से रहे देव भी (दिवि) द्युलोकमें रहते हैं अर्थात् द्युलोक में परमात्मा के आश्रयसे रहते हैं ॥२३॥

Both (यत् च प्राणेन प्राणति) what breathes with breath, and (यत् च चक्षुषा पश्यति) what sees with sight. (सर्वे दिवि देवाः) all the deities are in heaven, (दिविश्रितः) the heaven resorters, (जज्ञिरे) were born (उच्छिष्टात्) from the Remnant.

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२४॥

पदानि— ऋचः । सामानि । छन्दांसि । पुराणम् । यजुषा । सह । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः ॥२४॥

अर्थ— (ऋचः) ऋचाएँ, (सामानि) सामगान, (छन्दांसि) छन्द अथवा अथर्ववेद, (यजुषा सह पुराणं) यजुर्वेद के साथ पुराण, ये सब (उच्छिष्टात् जज्ञिरे) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं। (सर्वे दिविश्रितः देवाः) सब द्युलोक के आश्रयसे रहनेवाले देव भी (दिवि) द्युलोक में उसी परमात्मा के आश्रय से रहते हैं ॥२४॥

(ऋचः) The Verses, (सामानि) the Chants, (छंदांसि) the metres, (पुराणं) the ancient stories, (यजुषा सह) together with the formula (जज्ञिरे) were born (उच्छिष्टात्) from the Remnant, so also (सर्वे देवाः) all the deities (दिवि-श्रितः) that resort in the heaven (दिवि) are set in the same heaven. i.e., in the same Remnant.

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२५

पदानि— प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः ॥२५॥

अर्थ— (प्राणापानौ) प्राण और अपान (चक्षुः श्रोत्रं) आंख और कान (अक्षितिः च या क्षितिः च) अविनाशी और विनाशी



सब तत्त्व तथा (सर्वे देवाः) सब देवता जो कि (दिविश्रितः) द्युलोकके आश्रय से रहते हैं, वे सब के सब (दिवि) द्युलोक में रहनेवाले (उच्छिष्टात्) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट रहे परमात्मासे हि (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२५॥

(प्राणापानौ) Breath and expiration, (चक्षुः श्रोत्रं) sight and hearing, (अक्षितिः) indestructible and (क्षितिः च या) what is destructible so also (सर्वे देवाः) all the deities, (दिविश्रितः) that resort in the heaven, (जज्ञिरे) are born (उच्छिष्टात्) from the Remnant (दिवि) in the heaven.

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२६॥

पदानि— आऽनन्दाः । मोदाः । प्रऽमुदः । अभिमोदऽमुदः । च । ये । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविश्रितः ॥२६॥

अर्थ— (आनन्दाः) आनन्द, (मोदाः) सन्तोष, (प्रमुदः) हर्ष, (ये अभीमोदमुदः) आनन्द देनेवालों से होनेवाली तृप्तियां, ये सब (उच्छिष्टात् जज्ञिरे) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट रहे परमात्मासे उत्पन्न हुए तथा (सर्वे देवाः) सब देवता (दिविश्रितः) जो द्युलोक के आश्रयसे रहते हैं, वे सब (दिवि) द्युलोकमें उसी परमात्माके आश्रयसे रहते हैं ॥२६॥

(आनन्दाः) Delights, (मोदः) joys, (प्रमुदः) enjoyments, (ये अभीमोदमुदः) and they that enjoy enjoyments,

(उच्छिष्टात् जज्ञिरे) were born from the Remnant; so also (सर्वे देवाः) all the deities, (दिविश्रितः) that resort in the heaven are fixed (दिवि) in the same Heaven, i. e., in the same Remnant.

देवाः पितरो मनुष्याऽ गन्धर्वाप्सरसंश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२७॥

पदानि– देवाः । पितरः । मनुष्याः । गन्धर्वऽअप्सरसः । च । ये । उत्ऽशिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिविऽश्रितः ॥२७॥

अर्थ– (देवाः) देव, ज्ञानी (पितरः) रक्षक, पितर, (मनुष्याः) मानव, (गंधर्वाप्सरसः च ये) और जो गंधर्व और अप्सराएं हैं, यह सब तथा (सर्वे देवाः) सब देव जो (दिविश्रितः) द्युलोकके आश्रयसे रहते हैं, वे सब (दिवि) द्युलोक में (उच्छिष्टात्) ऊर्ध्व भागमें अवशिष्ट परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं ॥२७॥

(देवाः) The deities, (पितरः) the fathers, protectors, (मनुष्याः) human beings, (गंधर्वाप्सरसः च ये) and they that are Gandharvas & Apsaras, (सर्वे देवाः) all the deities, (दिवि-श्रितः) that resort in the heaven, (जज्ञिरे) are born (उच्छिष्टात्) from the Remnant (दिवि) in the heaven.

उच्छिष्टका आधार ।

इस सूक्त में एक ही बात कही है, वह यह है कि, संपूर्ण विश्वको उच्छिष्ट का आधार है, उच्छिष्ट से यह सब विश्व हुआ है, उच्छिष्ट के आधारसे रहता है, और उच्छिष्ट में लीन होता है ।

उच्छिष्ट क्या है ?

जो विश्व निर्माण होने के बाद अपने अमृत निज स्वरूपमें रहता है, वह (उत्+शिष्ट) उच्छिष्ट है।

त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः। पादोऽस्येहाभवत्पुनः ॥ (ऋ० १०।९०।३)

'त्रिपात् पुरुष ऊर्ध्व भागमें सबसे ऊपर रहा है। और एक अंश इस विश्वमें बार बार उत्पन्न होता है।' जो ऊपर रहा है, वही (उत्+शिष्ट) उच्छिष्ट है।

एकं यदङ्गं अकृणोत् सहस्रधा ॥ (अ० १०।७।९)

'अपने एक अंगको जिसने सहस्रधा विभक्त किया है।' अपने एक अंश को जिसने सहस्रों रूपों में ढाल दिया है। यही अर्थ **(पादः इह पुनः अभवत्)** एक अंश यहां बार बार बना है। इस मंत्र में दर्शाया है।

उच्छिष्ट का अर्थ है ऊपर अवशिष्ट रहा। इसके आधारसे सब कुछ रहता है। यही इस सूक्त में कहा है। इस का प्रकरणशः विवरण यह है।

मानवसृष्टिमें अनुभव होनेवाले गुण।

निम्नलिखित गुण मानवोंमें दिखाई देते हैं। परन्तु ये सब गुण परमात्मा के आधार से ही मानवोंमें दीखते हैं—

(मं० ९) **श्रद्धा, तप, व्रत,**

(मं० २५) **प्राण, अपान, श्रोत्र,**

(मं० २३) **(यत् प्राणेन प्राणिति)** जो प्राण से जीवित रहता है, चलनवलन करता है, **(यत् चक्षुषा पश्यति)** जो आंख से देखता है।

(मं० २६) **आनंदाः, मोदाः, प्रमुदः, अभिमोदमुदः**= ये सब आनन्द के भेद हैं।

(मं० १७) **(ऋतं)** सरलता, **सत्यं, तपः, (श्रमः)** परिश्रम, कर्मण्यता, प्रयत्नशीलता, **(धर्मः)** उष्णता, गर्मी, **कर्म, वीर्य, (लक्ष्मीः)** शोभा, धन, **(बले बलं)** बलवान् के अन्दर रहनेवाला बल, शक्ति, सामर्थ्य।

(मं० ३) (श्रीः) संपत्ति, शोभा, धन।

(मं० १७-१८)(राष्ट्रं) राज्य, राष्ट्रीयता, शौर्य, राज्य चलानेका सामर्थ्य।

(मं०१८) (समृद्धि) सब सुखसाधनोंकी पूर्णता, (ओजः) शारीरिक सामर्थ्य, (आकूतिः) संकल्प, (क्षत्रं) क्षात्रतेज, प्रजापालन का सामर्थ्य।

(मं० २२) (राद्धिः) उत्तम सिद्धि, (प्राप्तिः) यज्ञादिकों की प्राप्ति, (समाप्तिः) कर्मादि की उत्तम संपूर्णता, (व्याप्तिः) प्रभाव की व्याप्ति, जितने क्षेत्रपर परिणाम होता है, (महः) महत्त्व, (एधतुः) हलचल, (अति-आप्ति) अल्प प्रयत्नसे बहुत फल प्राप्त होना, (भूतिः) ऐश्वर्य, ये सब गुण उसी उच्छिष्ट में (आहिता निहिता हिता) स्थिर हुए हैं।

(मं० १३) (सूनृता) सत्य वाणी, (संनतिः) नम्र भाव, (क्षेमः) कल्याण, (ऊर्जा) बल, अन्न से प्राप्त होनेवाली शक्ति, (अमृतं) अमरत्व, (सहः) शत्रु का हमला सहन करनेका सामर्थ्य तथा (सर्वे प्रत्यंचः कामाः कामेन तातृपुः) जो कामनाएं प्रत्येक व्यक्तिमें तथा प्रत्येक समाजमें रहती हैं और जिनकी तृप्ति कामभोगसाधन प्राप्त होनेसे होती हैं, वे सब कामनाएं, यह सब यद्यपि व्यक्ति में दीखनेवाले गुण हैं, तथापि ये (उच्छिष्टे) ऊपर अवशिष्ट जो परब्रह्म है, उसीके आश्रयसे ये सब गुण व्यक्तिमें प्रकाश रहे हैं।

ये सब वैयक्तिक गुण भी परमात्माके ही हैं, ऐसा मानकर हरएक व्यक्ति को अपना अहंकार छोडना चाहिये और परमात्माके सन्मुख विनम्र होकर रहना चाहिये।

इनमें कई गुण राष्ट्रीय भी हैं। अतः उनका मनन पाठक राष्ट्रभाव के साथ करें। कई गुण सामाजिक हैं। उनका मनन सामाजिक दृष्टिसे करना योग्य है। उक्त स्थान में 'तपः और राष्ट्र' ये शब्द दो दो वार आये हैं, इनका प्रयोजन ढूंढना चाहिये।

विश्वरूप ।

इन मन्त्रों में कई वस्तुएं ऐसी दर्शायीं हैं कि जो परमेश्वर के एक अंशसे जो विश्व बना है, [पादः अस्य इह पुनः अभवत् । ऋ० १०।९०।३] उसके अन्दर दिखाई देती हैं । परमेश्वर का जो अंश अपने आपको [एकं अंशं सहस्रधा अकरोत् । अथर्व० १०।७।९] सहस्रधा विभक्त करके अनंत पदार्थोंका निर्माण करता है, इस सहस्रधा विभक्त होनेसे निम्न लिखित वस्तुएं बनी हैं ।

[मन्त्रः १] [लोकः] लोकलोकान्तर, [विश्वं] विश्व, सब जो कुछ है, स्थिरचरसमष्टि, [मं० २] [विश्वं भूतं] जो कुछ बना है, जो निर्माण हुआ है, वह सब ।

(मं० १४) [नव भूमीः] नौ भूमियां, भूमिके नौ विभाग अथवा नौ ग्रह, (दिवः) द्युलोक, आकाशमें दीखनेवाले सब नक्षत्र आदि।

(१८) (षट् ऊर्व्यः) पृथिवीके छः विभाग, अथवा छः पृथिवियाँ ।

'नव भूमीः' और 'षट् ऊर्व्यः' का अधिक स्पष्टीकरण खोज करके प्राप्त करना चाहिये ।

(२) (द्यावापृथिवी) द्युलोक, पृथ्वीलोक ।

(२१) (शर्कराः) रेत, (सिकताः) बालू, (अश्मानः) पत्थर, आदि सब प्रकारके पत्थर, (तृणानि) अनेक प्रकार के घास, (वीरुधः) लतायें, (औषधयः) ओषधि-वनस्पतियां ।

(२)(आपः समुद्रः) जल, समुद्र, (मं० १४)(समुद्राः) सागर, महासागर,
(२१) (अभ्राणि) मेघ, (विद्युतः) बिजुलियाँ,
(२०) (स्तनयित्नुः) गर्जना करनेवाला मेघ, (मही श्रुतिः) बडी गर्जना,
(२१) (वर्षं) वृष्टि, पर्जन्य, वर्षा ।
(२०)(घोषणीः आपः) गर्जना करनेवाली बडी नदियोंके महापूरके जल ।

(२) (वातः) वायु।

ये सब विश्वान्तर्गत पदार्थ अर्थात् यहां न कहे अन्य सब पदार्थ भी, उच्छिष्ट अर्थात् ऊपर अवशिष्ट रहे परमात्मामेंहि, उसीके आश्रयसे यहां रहे हैं।

देवतागण।

ऊपर कहा जो विश्वरूप हैं, वह सब देवतामयहि है। अतः उसी विश्व का वर्णन देवतासंकेत से अब करते हैं-

(मन्त्राः २३-२७) **(सर्वे दिविश्रितः देवाः)** द्युलोकके आश्रय से जो सूर्यादि देव रहते हैं, वे सबके सब देवतागण, (मं० ४) **(दश विश्वसृजो देवाः)** दस विश्वका निर्माण करनेवाले देव,

(१) (लोकः) सब लोकलोकांतर तथा **(लौक्याः)** इन लोकलोकान्तरमें रहनेवाले विविध देवतागण, **(प्रजापतिः)** प्रजाओंका पालन करनेवाला राजा,

(२५) (क्षितिः) पृथिवी, टुकडा, **(अक्षितिः)** पृथ्वीसे भिन्न अन्तरिक्ष, द्यु आदि लोक, जो टूटा नहीं, सब मिलकर अखण्ड सत्तत्त्व,

(१) अग्नि, (आप्रियः) आप्रीसूक्तमें आनेवाली सब, अग्निरूप देवताएं, इन्द्र, **(२) चन्द्रमा, (१४) (सूर्यः आभाति)** प्रकाशनेवाला सूर्य,

काल—(१७) भूत, [वर्तमान], भविष्यत, **(१४) अहोरात्र, (२०) (अर्धमासाः)** पक्ष, **(मासाः)** महिने, **ऋतु, (आर्तवाः)** ऋतुओंसे बननेवाले कालविभाग, **(१८) संवत्सरः**

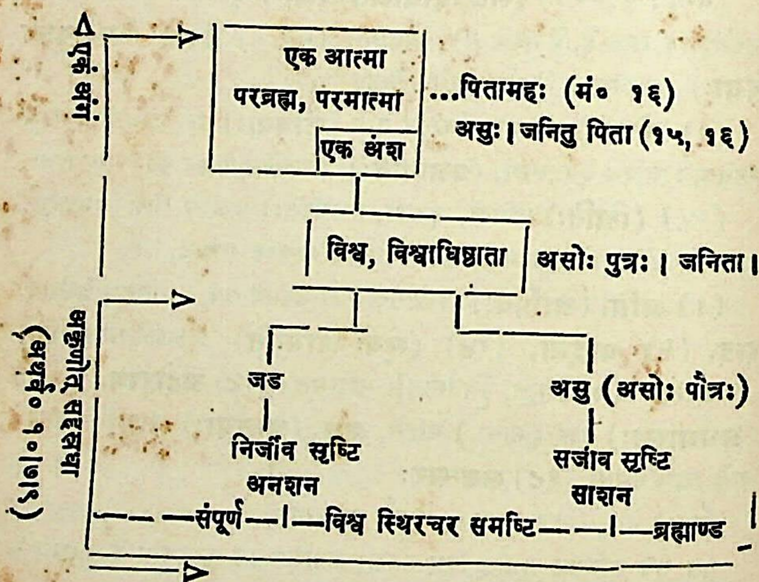
(२७) देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व, अप्सराएं,

यह सब उच्छिष्ट अर्थात् विश्व बनकर अवशिष्ट रहे परमात्मा के आश्रय से रहता है। इस सबको परमात्मा का आश्रय है।

विश्वका निर्माता।

परमात्मा अखण्ड एकरस है। इसका एक अंश इस विश्व के रूपमें अपने आपको ढाल देता है, विश्वरूप बनता है। इस विश्वका अभिमानी देव भी उसी

अंश से होता है, जो ईश्वर कहलाता है । अर्थात् यही विश्व का अधिष्ठाता है, इसी को (**विश्वस्य ईशानः । मं० १६**) विश्व का ईश्वर कहते हैं । यही (**विश्वस्य भर्ता**। मं० १५) विश्वका पोषण करनेवाला है । इस विश्व में (**असुः**) प्राणसंज्ञक शक्ति भी कार्य कर रही है, जिससे प्राणी और अप्राणी, सजीव निर्जीव सृष्टि उत्पन्न हुई है । इस जीव को प्राणशक्ति का प्रदान करने के कारण, और सर्व जीवनशक्ति उसी के आधार से रहने के कारण विश्वके अधिष्ठाताको भी '**असु**' हि कहते हैं ।इसका यह स्वरूप बनता है ।



(**मन्त्र**) **नाम, रूप, (३) सत्, असत्, मृत्युः** (वाजः) अन्न, (व्रः) स्वीकारने योग्य वस्तु, (द्रः) नाश करने योग्य वस्तु, (न्यः) अन्यत्व, (ब्रह्म) ज्ञान अथवा सच्चिदानन्द का अनुभव, (४) (दृढः) दृढता, (दृंहस्थिरः) दृढता और स्थिरता यह सब परमात्मा के आधार से रहता है ।

वेद।

(मं० ५) ऋक्, साम, यजुः, (मं० २४) ऋचः, सामानि, छंदांसि, यजुषा सह पुराणं,

(मं० ५) प्रस्तुतं (विशेष-स्तुति), स्तुतं (स्तुति),

सामगान– (मं० ५) उद्गीथः, हिंकारः, स्वरः, साम्नः, मेडिः, (मं० ६) ऐंद्राग्नं, पावमानं, महानाम्नी, (मं० १२) प्रतिहारः, निधनं,

यहां मन्त्र ५ में ऋक्–साम–यजु ये एकवचनी शब्द हैं और ये ही शब्द २४ वें मन्त्र में बहुवचनी हैं। यजुर्वेद के साथ पुराण शब्द यहां आया है। सामगान के अंग मं० ५ तथा १२ में कहे गये हैं। यह सब वेद– शब्द-ब्रह्म– उच्छिष्ट ब्रह्म के आश्रय से रहा है।

यज्ञ।

(मं० ६) महाव्रत, (यज्ञस्य अंगानि) यज्ञ के सब अंग, (मं० ९) दक्षिणा इष्टं, पूर्तं, (मं० ८) अग्न्याध्येयं (अग्न्याधान), दीक्षा, काम-प्रः छन्दसा सह, (मं० ९) अग्निहोत्रं वषट्कारः, (मं० १८) इडा, प्रैषाः, ग्रहाः, हविः,

(मं० ७) राजसूयः, वाजपेयः अग्निष्टोमः, अध्वरः, अर्क–अश्व-मेधौ, मदिन्तमो जीवबर्हिः, (मं० ८) उत्सन्नयज्ञाः, सत्राणि (दीर्घकाल चलनेवाले यज्ञ)।

(१०) एकरात्र, द्विरात्र, (११) चतूरात्र, पञ्चरात्र, षड्रात्र, सप्त-रात्र, (उभयः) अष्टरात्र, दशरात्र, षोडशी, (अमृतेन, हिता यज्ञाः) अमृत की सिद्धि देनेवाले यज्ञ, (१२) द्वादशाहः, विश्वजित्, अभि-जित्, सान्ह–अतिरात्रौ. (१०) सद्यःक्रिः, प्रक्रीः, उक्थ्यः ओतं निहितं; विद्यया यज्ञस्य अणूनि (यज्ञ के विभाग)।

(१९) चातुर्मास्यानि, निविदः, यज्ञाः, होत्राः, पशुबंधाः, इष्टयः, चातुर्होतारः (यज्ञाः)

(१५) उपहव्यं, विषुवान्, गुहाहिता यज्ञाः।

ये सब प्रकारके यज्ञ, यज्ञके अंग, और यज्ञके साधन सबके सब उच्छिष्ट-संज्ञक जो परमात्मा, सृष्टि एक अंशसे बननेके बाद, अवशिष्ट रहा है, उसके आश्रय से रहे हैं, उससे उत्पन्न हुए हैं और उसीमें संपूर्ण होते हैं।

यहां जितने पदार्थ कहे हैं, उतने ही परमात्मासे उत्पन्न होकर परमात्मा के आधार से रहे हैं, ऐसा नहीं है, परन्तु यह एक संकेतमात्र कहा है, इस विश्वके अन्दर जो कुछ है, वह सब का सब उस परमात्मासे उत्पन्न होता है, उसीके आधारसे रहता है, और उसीमें लीन होता है। केवल वस्तुमात्र या पदार्थमात्रही नहीं, पर जो जो भाव इस विश्वमें दीखते हैं, वे सब भाव भी इसी परमात्मासे उत्पन्न होकर उसीके आश्रय से रहे हैं।

कोई वस्तु और कोई भाव ऐसा नहीं है कि, जो उस परमात्मा के आधार के विना रहता है, परमात्मा के आधारके विना बढता है और अपनी निज स्वतंत्र सत्तासे रहता है। जो भी कुछ है, वह सब परमात्माकी सत्ताही है, उससे भिन्न कोई दूसरी सत्ताही नहीं है।

एकं सत् (ऋ० १।१६४।४६)

एकही परमात्मा की सत्ता है, उससे अनन्त रंगरूपोंवाला विश्व बना है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। (ऋ० १०।९०।२)

'वही परमात्मा सब कुछ है। जो भूतकालमें हुआ था, जो वर्तमानकालमें है और जो भविष्यकालमें होगा, वह सब परमात्माकाही रूप है।' उसीसे हुआ है, उसीसे रहा है, और उसीमें है।

संपूर्ण विश्व उस परमात्मा के एक छोटेसे अंश से हुआ है और जो अवशिष्ट है, वही उच्छिष्ट नामसे इस सूक्तमें वर्णन किया गया है।

मातृभूमिसूक्तम् ।

(अथर्व० १२।१।१)

६३ अथर्वा ऋषिः । भूमिर्देवता । छन्दांसि–त्रिष्टुप् ; २ भूरिक् ; १०, ३८ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ७ प्रस्तारपंक्तिः; ८, ११ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टिः; ९ परानुष्टुप् ; १२–१३, १५ पञ्चपदा शक्करी (१२–१३ त्र्यवसाना०); १४ महाबृहती; १६, २१ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ; १८ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्करी; १९–२० उरोबृहती (२० विराट्); २२ त्र्यवसाना षट्पदाविराडतिजगती: २३ पञ्चपदाविराडतिजगती; २४ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती; २५ त्र्यवसाना सप्तपदा–उष्णिगनुष्टुब्गर्भा शक्करी; २६–२८,३३, ३५, ३९–४०, ५०, ५३–५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप् (५३ पुरोबार्हता); ३० विराड् गायत्री; ३२ पुरस्ताज्ज्योतिः; ३४ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्बृहतीगर्भातिजगती; ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पंक्तिः; ३७ त्र्यवसाना पञ्चपदा शक्करी; ४१ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मती शक्वरी; ४२ स्वराडनुष्टुप् ; ४३ विराडास्तारपंक्तिः; ४४–४५, ४९ जगती; ४६ षट्पदानुष्टुब्गर्भा पराशक्वरी; ४७ षट्पदोष्णिगनुष्टुब्गर्भा–परातिशक्वरी; ४८ पुर-उष्णिक्; ५१ त्र्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भा–ककुम्मती शक्वरी; ५२ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा परातिजगती; ५७ पुरोतिजागता जगती; ५८ पुरस्ताद्बृहती; ६१ पुरोबार्हता; ६२ पराविराट् ॥

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति । सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

पदानि– सत्यम् । बृहत् । ऋतम् । उग्रम् । दीक्षा । तपः । ब्रह्म । यज्ञः । पृथिवीम् । धारयन्ति । सा । नः । भूतस्य । भव्यस्य पत्नी । उरुम् । लोकम् । पृथिवी । नः । कृणोतु ॥१॥

अर्थ—(बृहत् सत्यम्) बडी या अटल सत्यनिष्ठा (ऋतम्) यथार्थ ज्ञान, (उग्रम्) क्षात्र तेज, (तपः) धर्मानुष्ठान या धर्मका पालन करनेमें होनेवाले कष्टोंको सहन करना, (दीक्षा) हर एक धर्मकार्य के करने में चतुराई-दक्षता, (ब्रह्म) सत्य ज्ञान, (यज्ञ) यज्ञ, सत्कार--संगति--दानात्मक सत्कर्म ये सब गुण (पृथिवीम्) मातृभूमि या राष्ट्रका (धारयन्ति) पालनपोषण, और रक्षण करते हैं। (सा पृथिवी) वह मातृभूमि (भूतस्य) प्राचीन और (भव्यस्य) भविष्य के तथा बीच में आ जानेवाले वर्तमान समयके यावत् सब पदार्थों की (पत्नी) पालन करनेवाली हमारी मातृभूमि (नः) हमको (उरुं) बडा भारी (लोकं) स्थान (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थ- जो मनुष्य यह चाहते हों कि, राष्ट्रपर अपनी सत्ता, अधिकार, बना रहे, उसमें निम्न गुणों का होना आवश्यक है, सत्यनिष्ठा, उद्योगशीलता, महत्त्वाकांक्षाके साथ कार्य आरम्भ करने और उसको सिद्ध करनेका उत्साह, वस्तुस्थितिका उत्तम ज्ञान, धैर्य, साहस और तेजस्विता, धर्मनिष्ठा, इंद्रियोंका निग्रह, ज्ञान प्राप्त करना, शांत स्वभाव और अचाञ्चल्य, परोपकारिता, ईश्वर-भक्ति, अङ्गीकार किये हुयं कार्य में दक्षता, नियमानुसार चलनेका अभ्यास, धनसंचय, सर्वसहायक पदार्थों का विपुल संग्रह, आपस में एक दूसरे का सत्कार करना, एकता से रहना, दुःख और आपत्ति में पडे हुए लोगों की सहायता करना, यज्ञ अर्थात् स्वार्थत्याग करना, मातृभूमिपर अटल निष्ठा इत्यादि। जिन मनुष्यों में ये गुण होते हैं, वेही अपने राज्य को संभाल सकते

और नया राज्य प्राप्त कर सकते हैं। इस पहिले मन्त्र में राष्ट्रसंरक्षक मनुष्यों के लिये आवश्यक गुणोंका स्पष्ट उल्लेख कर, यह प्रार्थना की गयी है कि-हे मातृभूमि ! हम पूर्वोक्त संपूर्ण उत्तम गुणों से युक्त हो, तेरा संरक्षण करते हैं और सदाहि यह करने को तैयार हैं; तू अपने आधार से भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों के संपूर्ण पदार्थों का उत्तम प्रकार से पोषण करने में समर्थ है। जब कि हम रातदिन तेरा संरक्षण करते हैं, तू भी हमारी कीर्ति बढाने का कारण हो ॥१॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **सत्यं**– जो तीनों कालों में एक जैसा रहता है, सत्य, सच्चाई।

२. **ऋतं**– सरल, सीधा।

३. **उग्रं**– उग्रत्व, क्षत्रियों में जो उग्रता रहती है, रौद्र भाव।

४. **दीक्षा**– यज्ञ में विशेष प्रकार के आचरण का जो व्रत लिया जाता है। विशेष नियमों का पालन, दक्षता।

५. **तपः**– तपना, कष्ट सहना, धर्मकर्म करनेमें जो दुःख होगा उसको आनन्दसे सहना, शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करना, व्रतनियम पालन करने के कष्टों को सहना,

६. **ब्रह्म**– ज्ञान, सत्य ज्ञान,

७. **यज्ञ**– सत्कारके योग्योंका सत्कार, मित्रता अथवा निर्वैरभाव, और सबपर उपकार करने का नाम यज्ञ है। ये यज्ञ देशकालानुसार अनेक हैं, वें योग्य समय में करना।

८. **भूतस्य भव्यस्य पत्नी**– भूतभविष्य का पालन करनेहारी।

९. **उरुं लोकं**– विस्तृत स्थान, विस्तृत कार्यका क्षेत्र।

[बृहत् सत्यं] Great truth, [ऋतं] righteousness, [उग्रं] vigour, [दीक्षा] consecration, [तपः] penance, [ब्रह्म] know-

ledge, and [यज्ञः] sacrifice [धारयन्ति] sustain [पृथिवीं] the [mother] earth. May [पृथिवी] this earth, who is [पत्नी] protector of [भूतस्य] what is and [भव्यस्य] what is to be, [कृणोतु] create [उरुं लोकं] ample space [नः] for us all.

पृथिवी= Earth, mother-earth, mother-country. [पृथिवी नः उरुं लोकं कृणोति]– May the mother-land give ample field of action to us.

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्यां उद्वतः प्रवतः समं बहु। नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

पदानि– असम्ऽबाधम्। मध्यतः। मानवानाम्। यस्याः। उत्ऽवतः। प्रऽवतः। समम्। बहु। नानाऽवीर्याः। ओषधीः। या। बिभर्ति। पृथिवी। नः। प्रथताम्। राध्यताम्। नः ॥२॥

अर्थ–(यस्याः) जिस हमारी मातृभूमिके (मानवानां) मननशील मनुष्योंके (म[-ब-]ध्यतः) मध्यमें (प्रवतः) नीचता (उद्वतः) उच्चता रहनेपरभी परस्पर (बहु) बहुतही (समं) समता (असंबाधं) और ऐक्य या मैत्रीभाव है; (या) जो (नः) हमारी (पृथिवी) मातृभूमि (नानावीर्याः) रोगों को दूर करनेवाली अनेक उत्तम गुणयुक्त (औषधीः) वनस्पति (बिभर्ति) धारण करती है, वह मातृभूमि (नः) हमारी (प्रथतां) कीर्ति या यश के वृद्धिका (राध्यतां) साधन करे ॥२॥

भावार्थ— जिस हमारे राष्ट्र या देशके मनुष्यों में परस्पर द्रोह नहीं है, प्रत्युत उनमें पूर्ण ऐक्यभाव है। विशेष कर हमारे अगुआ लोगोंमें अर्थात् हमारी सब प्रकार की रक्षा करनेवाले लोकाग्रणीयों में परस्पर ऐक्यमत है और वे एकत्र हो मिलकर सब काम करते हैं। जिस भूमीमें उत्तम प्रकारकी पुष्टिकारक रोगविनाशक अनेक औषधियां और सब तरहकी वनस्पतियां पैदा होती हैं, वह हमारी प्रिय मातृभूमि हमारी कीर्ति और यशको दिगन्तरमें फैलानेके लिए कारणीभूत हो ॥२॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **संबाधः**– कलह, झगडा, युद्ध, नीचे दबाव, दबाना, एकदूसरेको नीचे दबाना।

२. **असंबाधः**– जहां एकदूसरेको नीचे दबाना नहीं है। परस्पर प्रेमभाव का वर्ताव।

३. **बध्यतः**– बांधनेवाले, परस्पर आकर्षित हुए।

४. **उद्वतः**– ऊंचाई, ऊंची जगह, उच्चता।

५. **प्रवतः**– नीचाई, नीची जगह, नीचता।

६. **समं**– समता, समत्व।

७. **प्रथतां**– प्रसिद्धि।

८, **राध्**– सिद्ध होना, सिद्धि को प्राप्त करना।

There is [असंबाधं] un-oppressedness [मध्यतः-बध्यतः] in the midst [मानवानां] of all men, although there are [उद्वतः] heights, [प्रवतः] advances and [बहु समं] much equality in them. Let [नः पृथिवी] this our [mother] earth, [या] who [बिभर्ति] bears [ओषधीः] the herbs [नानावीर्याः] of various virtue, [प्रथतां] be extended and [राध्यतां] be prosperous [नः] for us all.

१. असंबाधं-not over-crowded, unoppressedness.
२. उद्वत्- height, elevation, dignity.
३. प्रवत्- slope, smooth course, advance.

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

पदानि— यस्याम् । समुद्रः । उत । सिन्धुः । आपः । यस्याम् । अन्नम् । कृष्टयः । सम्ऽबभूवुः । यस्याम् । इदम् । जिन्वति । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः । पूर्वऽपेये । दधातु ॥३॥

अर्थ— (यस्यां समुद्रः) जिस हमारी मातृभूमि में महासागर (उत) और (सिन्धुः) अनेक नद नदी, (आपः) झरने, झील और ताल तलैयां बहुत हैं, (यस्याम्) जिस मातृभूमि में (अन्नम्) सब भांति के अन्न और फल तथा शाक इत्यादि बहुतायतसे उपजते हैं, (यस्यां इदं प्राणत्) जिस में सजीव, (एजत् जिन्वति) प्राणी चलते फिरते हैं, जिसमें (कृष्टयः) कृषीवल, खेती करनेवाले मनुष्य, शिल्पकर्मविशारद कारीगर तथा उद्योगशील जन (संबभूवुः) बहुत संघटित हुए हैं, (सा) इस तरह की (भूमिः) हमारी मातृभूमि (नः) हमको (पूर्वपेये) समस्त भोग, ऐश्वर्य (दधातु) देवे ॥३॥

भावार्थ— जिस हमारी मातृभूमिमें सागर, महासागर, नद, नदी, तालाव, कुए, बावली, नहर, झीलें इत्यादि खेती को पानी मिलने के बडे बडे साधन हैं और जिस भूमिमें सब तरह के विपुल अन्न पैदा होकर सब को खाने

को मिलता है, जिससे सब प्राणीमात्र सुखी हैं तथा जिस में कारीगर लोक कलाकौशलमें कुशल हैं, किसान लोग खेती के काममें प्रवीण हैं और अन्य लोग भी उद्योगी हैं, वह हमारी मातृभूमि हमें सदैव उत्तम उत्तम भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य देनेवाली होवे ॥३॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. कृष्टिः= कृषि कर्म करनेवाला, किसान ।

२. सं-भू= संघटित होना, संघ करना, मिलकर काम करना ।

३. पूर्वपेयं= पहिला पीनेयोग्य पेय, अपूर्व पेय, उत्तम भोग ।

Let this (नः भूमिः) our mother-land (यस्यां) in whom there are (समुद्रः) oceans, (सिन्धुः) rivers and (आपः) waters; (यस्यां) in whom there are (कृष्टयः) cultivators, who (सं-बभूवुः) come together and produce (अन्नं) eatables and (यस्यां) in whom (इदं) this all, that (प्राणत्) breathes and (एजत्) moves, (जिन्वति) is active, (दधातु) give us (पूर्वपेये) foremost place or precedence (in the sacrifice).

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

पदानि— यस्याः । चतस्रः । प्रऽदिशः । पृथिव्याः । यस्याम् । अन्नम् । कृष्टयः । सम्ऽबभूवुः । या । बिभर्ति । बहुऽधा । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः । गोषु । अपि । अन्ने । दधातु ॥४॥



अर्थ-(यस्याम्) जिस हमारी मातृभूमिमें (कृष्टयः) उद्यमशील तथा शिल्पचातुरी में निपुण निज परिश्रम से खेती करनेवाले (संबभूवुः) हुए हैं, (यस्याः पृथिव्याः चतस्रः प्रदिशः) जिस भूमिमें चार दिशायें और चार विदिशायें (अन्नम्) चावल, गेहूं आदि उपजाती हैं, (या बहुधा) जो अनेक प्रकार से, (प्राणत् एजत्) प्राण धारण करनेवालों और चलने फिरनेवालों का (बिभर्ति) धारणपोषण करती है, (सा नः पृथिवी) वह हमारी मातृभूमि हम सबोंके लिये (गोषु अपि अन्ने दधातु) गउओं और अन्नादिमें रखकर धारणपोषण करे ॥४॥

भावार्थ— जिस हमारी मातृभूमि में अत्यन्त उद्योगी तथा कलाकौशल खेतीबारीमें प्रवीण और परिश्रमी लोग होते आये हैं और हैं जिस भूमिको चारों दिशा और विदिशाओं में सर्वत्र उत्तम धनधान्य खूब उत्पन्न होता है, जिसके कारण सम्पूर्ण पशुपक्षी तथा वनस्पति और अन्य जीवधारियों का उत्तम प्रकार पालन, पोषण और संरक्षण होता है, वह हमारी मातृभूमि हमें सदैव गाय, घोडे और अन्न इत्यादि देनेवाली होवे ॥४॥

May (सा) that (भूमिः) land of (नः) ours, (यस्याः) who has got (चतस्रः प्रदिशः) four wide regions (पृथिव्याः) of the earth, (यस्यां) in whom (कृष्टयः) cultivators (संबभूवुः) unite and produce (अन्नं) eatables and (या) who (बिभर्ति) bears (बहुधा) manifoldly (प्राणत्) what breathes and what (एजत्) moves, (दधातु) keep us (गोषु) in abundance of kine and (अन्ने) in plenty of food.

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् । गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

पदानि– यस्याम् । पूर्वे । पूर्वऽजनाः । विऽचक्रिरे । यस्याम् । देवाः । असुरान् । अभिऽअवर्तयन् । गवाम् । अश्वानाम् । वयसः । च । विऽस्था । भगम् । वर्चः । पृथिवी । नः । दधातु ॥५॥

अर्थ— (यस्याम्) जिस हमारी मातृभूमि में पुराने समय के आर्य लोग (पूर्व-जनाः) बल, बुद्धि, वीर्य, ऐश्वर्यसे प्रसिद्ध, सब भांति के वीर पुरुष (विचक्रिरे) विक्रम, पराक्रम रूप कर्तव्य अच्छी तरह करते रहे हैं, (यस्यां देवाः) जिसमें दैवी वीर (असुरान्) हिंसानिरत शत्रु अर्थात् राक्षसी स्वभाववाले लोगों को (अभ्यवर्तयन्) जीतते रहे हैं; जो (गवां अश्वानां वयसः च) गौवें, घोडे और पशुपक्षियों को (वि–ष्ठाः) विशेष सुख देनेका स्थान है; (सा नः पृथिवी) वह हमारी मातृभूमि हमको (भगम्) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज. वीर्य, शौर्य (दधातु) देवे ॥५॥

भावार्थ— जिस हमारी मातृभूमि में हमारे प्राचीन पूर्वजोंने– ब्राह्मणों ने अपने ज्ञानद्वारा, क्षत्रियोंने अपनी वीरताद्वारा और वैश्योंने अपनी वाणिज्य–कुशलता द्वारा और कारीगरोंने अपनी कारीगरीसे–अनेक बडे बडे पराक्रम किये थे; जिस हमारे देशके विद्वान्, शूर, वीर व्यापारी और कारीगर लोगोंने मिलकर सम्पूर्ण हिंसक, आततायी, घातकी और दुष्ट लोगोंको नष्ट किया था और जो सुन्दर भूमि सब पशुपक्षियों को भी उत्तम निवासस्थान देती है, वह हमारी मातृभूमि हमारा ज्ञान, विज्ञान, शौर्य, तेज, वीर्य और ऐश्वर्य पूर्ण रूपसे बढानेवाली होवे ॥५॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. पूर्वजन= पूर्वज, प्राचीन समय के लोग ।

२. विष्ठाः= (वि–स्थाः) विशेष स्थान देनेवाली ।

May (नः पृथिवी) our mother-land, (यस्यां) in whom, (पूर्वजनाः) the men of old (पूर्वे) before us (विचक्रिरे) battled for victory, (यस्यां) in whom (देवाः) deities (अभ्यवर्तयन्) attacked (असुरान्) the hostile demons, and who is (विष्ठाः) the varied home (वयसः) of birds, (गवां) kine and (अश्वानां) horses, vouchsafe us (भगं) fortune and (वर्चः) splendour.

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरंण्यवक्षा जगतो निवेशनी । वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्नि-मिन्द्रवृषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

पदानि— विश्वम्ऽभरा । वसुऽधानी । प्रतिऽस्था । हिरण्यऽवक्षाः । जगतः । निऽवेशनी । वैश्वानरम् । बिभ्रती । भूमिः । अग्निम् । इन्द्रऽऋषभा । द्रविणे । नः । दधातु ॥६॥

अर्थ- जो (विश्वंभरा) सबकी पोषण करनेवाली (वसुधानि) सोना, चांदी, हीरा, पन्ना आदि अनेक रत्नोंकी खान है, (प्रतिष्ठा) सब वस्तुओं की आधारभूत (हिरण्यवक्षा) सुवर्ण आदिकी खान जिसके वक्षःस्थलमें है, (जगतः) जंगम जीवों या पदार्थोंकी (निवेशनी) बसानेवाली (वैश्वानरम्) सब भांति के मनुष्योंके समूहसे भरे हुए राष्ट्र रूप अग्निका (बिभ्रती) धारण करती हुई हमारी (भूमिः) मातृभूमि (अग्निम्) अग्रगामी, नेता अग्निको (इन्द्र-वृषभौ) शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर और बलवानों तथा (नः) हम सबको (द्रविणे) धन (दधातु) धारण करनेवाली हो ॥६॥

भावार्थ— सबोंका पोषण करनेवाली, रत्नोंकी धारण करनेवाली, सब पदार्थों को आश्रय देनेवाली, सुवर्ण आदिकी खान रखनेवाली, यावत् स्थावर, जंगम जीवों या पदार्थों को स्थान देनेवाली, सब प्रकार के मनुष्यों से युक्त, राष्ट्र या देशकी उन्नति में सहायता देनेवाली मातृभूमि है। वह हमारे नेता, ज्ञानियों और वीर पुरुषों तथा हमको सब प्रकारके ऐश्वर्य देनेवाली हो ॥६॥

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१ विश्वंभरा– सबका पोषण करनेवाली।
२ वसुधानी– धनोंका धारण करनेवाली।
३ हिरण्यवक्षा– सुवर्ण को अपने छातीमें धरनेवाली।
४ जगत्– प्राणी, हलचल करनेवाला, हिलनेवाली वस्तु।
५ निवेशनी– निवास करनेवाली।
६ वैश्वानर– (विश्व) सब (नर) मनुष्य जिसमें हैं। सब मानवोंमें रहनेवाला अग्नि। सार्वजनिक अग्नि।
७ अग्नि– अग्रणी, नेता, अग्नि।
८ इन्द्र-ऋषभौ– इन्द्र और वृषभ। (इन्द्रः) शत्रुनाशकर्ता, (वृषभ) बलिष्ठ। स्वामी और श्रेष्ठ।

May our mother (भूमिः) land, who is (विश्वं-भरा) all-maintaining, (वसु-धानी) wealth-holding, (प्रतिष्ठा) firm-standing, (हिरण्य-वक्षा) gold-breasted, (निवेशनी) harbourer (जगतः) of all that moves and (बिभ्रती) bearer of (अग्निं) fire who is (वैश्वा-नरं) the leader of all men, and (इन्द्र-वृषभा) who is the consort of mighty Indra, (दधातु) set (नः) us (द्रविणे) in prosperity.

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवी-मप्रमादम्। सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

पदानि— याम् । रक्षन्ति । अस्वप्नाः । विश्वदानीं । देवाः । भूमिम् । पृथिवीम् । अप्रऽमादम् । सा । नः । मधु । प्रियम् । दुहाम् । अथोऽइति । उक्षतु । वर्चसा ॥७॥

अर्थ— (अस्वप्नाः) निद्रा, तन्द्रा, आलस्य आदिरहित (देवाः) विद्वान् वीर और कुशल जन, (यां विश्वदानीम्) सब प्रकार के पदार्थोंकी देनेवाली और जो हमारे लिये (मधु प्रियं च दुहाम्) मधुर प्रिय हितकर पदार्थोंको दुहकर देती है, (पृथ्वीं भूमिम्) उस हमारी विस्तृत मातृभूमि की (अप्रमादम्) प्रमादरहित हो (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (सा) वह भूमि (नः) हमको (वर्चसा) शूरता, वीरता, ज्ञान तथा ऐश्वर्य से (उक्षतु) पूर्ण करे ॥७॥

भावार्थ— निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, अज्ञान आदि दोषरहित, सब बातों में चतुर और उद्यमी, परोपकारी, विद्वान्, शूर और धनिक लोग सब पदार्थों की देनेवाली जिस विस्तृत भूमिकी प्रमादरहित हो रक्षा करते हैं, वह हमारी मातृभूमि सब उत्तम और प्रिय तथा हितकारी पदार्थोंसे हमें पूर्ण सुसंपन्न करे और हममें ज्ञान, शूरता और धन उत्पन्न कर हमारी रक्षा करे ॥७॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **अस्वप्न=** निद्रारहित, आलस्यरहित ।

२. **विश्वदानीं=** सर्वदा ।

३. **अप्रमादं=** प्रमादरहित होकर ।

४. उक्षतु= सिंचन करे।
५. देवः– देवता, श्रेष्ठ जन।

May the mother (भूमिं पृथिवीं) land, whom the (अस्वप्नाः) sleepless (देवाः) divines (रक्षन्ति) protect (विश्वदानीं) all times (अप्रमादं) without failure, (दुहा) yield (नः) to us(प्रियं) dear (i.e. delicious) (मधु) honey, (अथो) and (उक्षतु) bestow us(वर्चसा) with a flood of splendour.

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिर-न्वचरन्मनीषिणः। यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्स-त्येनावृतममृतं पृथिव्याः। सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८॥

पदानि— या। अर्णवे। अधि। सलिलम्। अग्रे। आसीत्। याम्। मायाभिः। अनुऽअचरन्। मनीषिणः। यस्याः। हृदयम्। परमे। विऽओमन्। सत्येन। आऽवृतम्। अमृतम्। पृथिव्याः। सा। नः। भूमिः। त्विषिम्। बलम्। राष्ट्रे। दधातु। उत्ऽतमे ॥८॥

अर्थ— (या) जो भूमि (अग्रे) पहिले (सलिलं अधि) जलके भीतर (अर्णवे) समुद्रमें (आसीत्) थी, (यस्याः पृथिव्याः हृदयम्) जिस पृथ्वी का अन्तर्भाग (अमृतं इव) अमर स्थान के सदृश (सत्येन) सत्य के बल से (आवृतम्) व्याप्त है, जो भूमि (परमे व्योमन्) महत् आकाश में है, (याम्) जिसको (मायाभिः) कुशलताओंके साथ (मनीषिणः) मननशील विद्वान्

(अन्वचरन्) अच्छी तरह सेवा करते आये हैं, (सा नः भूमिः) वह भूमि हमको अपने (उत्तमे राष्ट्रे) उत्कृष्ट राज्यमें (त्विषिम्) तेज या दीप्ति, (बलम्) शूरता, वीरता, शारीरिक बल किंवा सैन्यबल (दधातु) धारण करे ॥८॥

भावार्थ— जो भूमि पहिले समुद्र के बीच में थी, जिसके बाहर, भीतर परमेश्वर व्याप्त है, जो आकाशमें अधर है और जिसकी सेवा विचारवान् लोग विशेष प्रसंगमें, गुप्त प्रयत्नों से तथा कुशलतासे करते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में तेजस्विता, विद्वत्ता, शूरता, शक्तिमत्ता इत्यादि गुण सदैव बढानेवाली हो ॥८॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **माया=** कौशल्य, कुशलता, कपट।

२. **मनीषिन्=** बुद्धिमान्।

May our (भूमिः) mother earth, (या) who (अग्रे) in the beginning (आसीत्) was (सलिलं) in the water (अर्णवे) of the ocean; (यां) whom (मनीषिणः) intelligent people (अन्वचरन्) served (मायाभिः) with skilful devices (यस्याः पृथिव्याः) and whose (अमृतं हृदयं) immortal heart is (परमे व्योमन्) in the highest heaven (आवृतं) covered (सत्येन) with truth, (दधातु) bestow (नः) upon us (त्विषिं) lustre and grant us (बलं) power (उत्तमे राष्ट्रे) in our best dominion.

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति। सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९॥

पदानि– यस्याम् । आपः । परिऽचराः । समानीः । अहोरात्रे इति । अप्रऽमादम् । क्षरन्ति । सा । नः । भूमिः । भूरिऽधारा । पयः । दुहाम् । अथोऽइति । उक्षतु । वर्चसा ॥९॥

अर्थ— (यस्याम्) जिस भूमिमें (परिचराः) सब ओर जानेवाले परिव्राजक संन्यासी (समानीः आपः) जल की भांति समदृष्टि हैं, (अहोरात्रे) रातदिन (अप्रमादम्) सावधान रह (क्षरन्ति) परिभ्रमण करते हैं, (अथो) और भी जो (भूरि-धारा) अनेक तरहका (पयः) खाने तथा पीने की वस्तु-भोज्य या पेय आदि दूध, घी इत्यादि (दुहाम्) देती है, (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (वर्चसा) तेज, प्रताप, बल, वीर्य आदि (उक्षतु) बढावे ॥९॥

भावार्थ— जैसे मेघोंका जल प्राणिमात्रको एकसमान मिलता है, वैसेही जिनका उपदेश सबके लिए एक समान होता है, ऐसे परोपकाररत संन्यासी जिस भूमिमें रातदिन उत्तम आचरण न छोडते हुए सदैव एकसमान संचार करते रहते हैं और जो भूमि हमें सब प्रकारके अन्न-जल देती रहती है, वह हमारी मातृभूमि हमारी तेजस्विताके द्वारा हमारी रक्षा करे॥९॥

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१. परिचर=सेवक, परिव्राट्, भ्रमण करनेवाले, स्वयंसेवक।

२. अप्रमादं= अशुद्धि न करते हुए।

May (सा नः भूमिः) our mother-land, (यस्यां) on whom (परिचराः) moving servants, (आपः) like waters, (क्षरन्ति) move (अहोरात्रे) day and night (अप्रमादं) without failure, (दुहां) yield (नः) us (भूरिधारा) many streams of (पयः) milk and (उक्षतु) bedew us (वर्चसा) with a flood of splendour.

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

पदानि— याम् । अश्विनौ । अमिमाताम् । विष्णुः । यस्याम् । विऽचक्रमे । इन्द्रः । याम् । चक्रे । आत्मने । अनमित्राम् । शचीऽपतिः । सा । नः । भूमिः । वि । सृजताम् । माता । पुत्राय । मे । पयः ॥१०॥

अर्थ— (याम्) जिस भूमिका (अश्विनौ) अश्विगणोंने (अमिमाताम्) मापन किया, (यस्यां विष्णुः) जिसमें पालनकर्ता देवने (विचक्रमे) भांतिभांतिका पराक्रम दिखाया है, (इन्द्रः) शत्रुविनाशक (शचीपतिः) शक्तिपति कर्मकुशल देवने (यां आत्मने अनमित्राम्) जिसको शत्रुरहित किया है, (सा नः माता भूमिः) वह माताके समान हमारी मातृभूमि (पुत्राय पयः) जैसा पुत्रको दूध देती है, वैसाही (पुत्राय मे) हम सब पुत्रोंको (विसृजताम्) खानेपीनेकी वस्तु प्रदान करे ॥१०॥

भावार्थ— लोगोंका पोषण करनेवाले और शत्रुओंका हनन करनेवाले वीरलोग जिसकी सदैव भलाई किया करते हैं, जिसके लिये पालनकर्ता लोग बडे बडे पराक्रम करते हैं और ज्ञानी, शूर पुरुष जिसे अपना मित्र समझते हैं, वह हमारी भूमि जिस प्रकार माता अपने बच्चोंको दूध पिलाती है, उसही प्रकार हमें संपूर्ण उपयोगके पदार्थ देवे ॥१०॥

(सा नः भूमिः) That our mother-land, (यां) whom (अश्विनौ) the Ashvins (अमिमातां) measured out, (यस्यां) on whom

(विष्णुः) Vishnu (विचक्रमे) strode out, (यां) whom (इन्द्रः) Indra (शचीपतिः) lord of power and might, (अनमित्रां) made free from his enemies (आत्मने) for bimself; (विसृजतां) give (मे) us, (पयः) milk, (माता पुत्राय) just as a mother to her son.

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्। अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥

पदानि— गिरयः। ते। पर्वताः। हिमऽवन्तः। अरण्यम्। ते। पृथिवि। स्योनम्। अस्तु। बभ्रुम्। कृष्णाम्। रोहिणीम्। विश्वऽरूपाम्। ध्रुवाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। इन्द्रऽगुप्ताम्। अजीतः। अहतः। अक्षतः। अधि। अस्थाम्। पृथिवीम्। अहम् ॥११॥

अर्थ— हे (पृथिवि ते गिरयः हिमवन्तः पर्वताः अरण्यं च ते) मातृभूमि! तेरे पहाड, बर्फसे ढके पर्वत और वन तुझे (स्योनम्) सुख के देनेवाले (अस्तु) हों, उन पर्वतों में शत्रु न रहें, वे शत्रु-रहित हों, इसलिये तुम (बभ्रुम्) भूरे रंगवाली अथवा सबोंका भरणपोषण करनेवाली हो, (कृष्णाम्) काली अथवा कृषिकर्म के उपयुक्त हो, (रोहिणीम्) वृक्षादिकों की उपजानेवाली हो, (विश्वरूपाम्) सब तरह का रूप धारण करनेवाली, (ध्रुवाम्)

स्थिर (पृथिवी) बडी विस्तृत लम्बी चौडी, (इन्द्र-गुप्ताम्) वीरों से रक्षित (भूमिम्) मातृभूमिको (अजितः) जिसे शत्रुओंने नहीं जीता, (अहतः) युद्ध आदिमें जिसे हानि नहीं पहुंची, (अक्षतः) कहींपर किसी अंगमें जिसे घाव नहीं हुआ, (अहं अध्यष्ठाम्) ऐसा होकर मैं इसका अधिष्ठाता या स्वामी होऊंगा ॥११॥

भावार्थ— हे मातृभूमि ! तुझपर जो पहाड और वरफ से ढके हुए पर्वत हैं, तथा जो छोटेवडे जंगल हैं, उनमें तेरे शत्रु कभी न रहें, तू शत्रुरहित होकर सदैव सवका पोषण करनेवाले उपजाऊ उत्तम वृक्षादिसे युक्त, स्थिर और वीरोंद्वारा रक्षित हो। ऐसी सर्वगुणसम्पन्न तुझपर हम शत्रुओं द्वारा पराजित न होते हुए तथा मृत अथवा घायल न होते हुए आनन्दसे रहें और अधिष्ठाता होकर, राष्ट्रको अपने आधिकार में रखें ॥११॥

O (पृथिवि) mother-earth ! let (ते) thy (गिरयः) hills and (हिमवन्तः पर्वताः) snowy mountains, and (ते अरण्यं) thy forest-land (अस्तु) be (स्योनं) pleasant to us all. (अहं) I (अजीतो) unharassed, (अहतः) unsmitted, (अक्षतः) unwounded (अध्यष्ठां) superintend (पृथिविं भूमिं) our mother earth, who is (बभ्रुं) brown, (कृष्णा) black, (रोहिणीं) red, (विश्वरूपां) many-coloured, all-formed, (ध्रुवां) fixed (पृथिवीं) spacious (इन्द्रगुप्तां) guarded by Indra.

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः। तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

पदानि– यत् । ते । मध्यम् । पृथिवि । यत् । च । नभ्यम् । याः । ते । ऊर्जः । तन्वाः । सम्ऽबभूवुः । तासु । नः । धेहि । अभि । नः । पवस्व । माता । भूमिः । पुत्रः । अहम् । पृथिव्याः । पर्जन्यः । पिता । सः । ऊ इति । नः । पिपर्तु ॥१२

अर्थ— हे (पृथिवी यत् ते मध्यम्) भूमि ! जो तेरे मध्यमें है, (यत् च नभ्यम्) जो नाभिस्थान है, (ते याः ऊर्जः) जो तुम्हारे बलयुक्त या अन्न आदि पोषण युक्त (तन्वः) शरीर अर्थात् मनुष्य (संबभूवुः) आपसमें संघटित हुए हैं, (तासु) उनमें (नः) हम को (अभिधेहि) स्थापित कर। और इस तरह (नः पवस्व) हमारी रक्षा कर, हमें पुनीत कर (भूमिः) हे भूमि ! तुम हमारी (माता) माता हो, (अहम्) हम उस (पृथिव्याः पुत्रः) पृथिवी के पुत्र हैं. [नरक से या दुःखसे जो त्राण या रक्षा करे, वह पुत्र है। हम माता के दुःखको दूर करेंगे इससे पुत्र हैं।] (पर्जन्यः) जलके वृष्टिसे पोषण करनेवाले मेघ हमारे पिता अर्थात् शस्य-संपत्ति से पालन करनेवाले हैं, (स उ नः) वह हमें निश्चयसे (पिपर्तु) पालन करे ॥१२॥

भावार्थ— हे मातृभूमि ! तेरे भीतर और ऊपर जो जो पदार्थ हैं, उन सबोंकी और तेरी, शत्रुओंके हाथसे रक्षा करने के लिये जो विद्वान्, बलवान् और धनवान् मनुष्य एकत्र होकर यत्न करते हैं, उनके उस संघमें हमें स्थान दे और हमारी रक्षा कर, क्योंकि तू हमारी माता और हम तेरे पुत्र दुःखसे छुडानेवाले हैं। इस पर्जन्य (मेघ) द्वारा धान्यादिक उत्पन्न होते हैं, इसलिये हम सबोंका वह पिता (पालक) है, यथार्थमें वह नियमित समयमें वर्षा कर हमारी रक्षा करे ॥१२॥

O (पृथिवि) mother-earth ! (यत् ते मध्यं) what is thy middle part, (यत् च नभ्यं) what is thy navel and (याः) what (ऊर्जः तन्वः) forceful bodies (सं-बभुवुः) arose from you, (तासु) in them (नः अभिधेहि) do thou keep us, (नः पवस्व) be purifying towards us. (भूमिः माता) Earth is our mother, (अहं पृथिव्याः पुत्रः) I am the son of this earth, (पर्जन्यः पिता) the rain is our father, (स उ नः पिपर्तु) may he protect us.

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः। यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्। सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३॥

पदानि— यस्याम्। वेदिम्। परिऽगृह्णन्ति। भूम्याम्। यस्याम्। यज्ञम्। तन्वते। विश्वऽकर्माणः। यस्याम्। मीयन्ते। स्वरवः। पृथिव्याम्। ऊर्ध्वाः। शुक्राः। आऽहुत्याः। पुरस्तात्। सा। नः। भूमिः। वर्धयत्। वर्धमाना १३

अर्थ— (यस्याम् भूम्याम् वेदिं परिगृह्णन्ति) जिस भूमिमें सब ओरसे लोग यज्ञकी वेदीका स्वीकार करते हैं, (यस्यां विश्वकर्माणः) जिसमें उन्नति के लिये कर्म करनेवाले सब लोग (यज्ञं तन्वते) परोपकारका ऐसा यज्ञकार्य करते हैं, [जिसमें सज्जनोंका सत्कार हो तथा उनके साथ सत्संग भी हो,] (यस्यां च पृथिव्यां पुरस्तात्) जिस पृथिवी में पहिले (ऊर्ध्वाः) उन्नति करनेवाले,

(शुक्राः) वीर्ययुक्त (आहुत्याः) आहुती के साथ (स्वरवः) यज्ञीय यूप (मीयन्ते) लगाये जाते हैं, (सा नो भूमिः वर्धमाना) वह पृथ्वी हम लोगों द्वारा बढाई गई हम लोगोंकी (वर्धयत्) उन्नति करे ॥१३॥

भावार्थ— जिस भूमिके लोग यज्ञकी वेदीके पास जाकर हवन करनेके लिये तैयार रहते हैं, जिस भूमि में लोग सदैव परोपकार और उन्नतिके काम करते रहते हैं और जिसमें विशेष कर उन्नतिकारक तथा बलोत्पादक यज्ञ किये जाते हैं, इसी प्रकार उत्साह देनेवाले भाषण और उपदेश सदैव किये जाते हैं। हमारे द्वारा उन्नति पानेवाली वह हमारी मातृभूमि हमारे लिये सब प्रकारसे उन्नतिका कारण हो ॥१३॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. विश्वकर्मन् –विश्वहित के लिये कर्म करनेवाले, सब प्रकारके श्रेष्ठ कर्म करने हारे।

२. मी– हिंसा करना, गति करना, स्थिर रखना।

(सा नो) Let that our (वर्धयत् भूमिः) prospering motherland, (यस्यां भूम्यां) on whom (परिगृह्णन्ति) people enclose (वेदिं) the sacrificial altar; (यस्यां) on whom (विश्वकर्माणः) men of varied works (तन्वते) extend (यज्ञं) their sacrifice, (यस्यां पृथिव्यां) on whom (ऊर्ध्वाः शुक्राः स्वरवः) erect and powerful sacrificial posts (मीयन्ते) are erected, (आहुत्याः पुरस्तात्) before the oblation; (नः वर्धयत्) make us prosper.

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन। तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४

पदानि– यः । नः । द्वेषत् । पृथिवि । यः । पृतन्यात् । यः । अभिऽदासात् । मनसा । यः । वधेन । तम् । नः । भूमे । रन्धय । पूर्वऽकृत्वरि ॥ १४ ॥

अर्थ– हे (पृथिवि यः नः द्वेषत्) मातृभूमि ! जो हमसे द्वेष करता है, (यः पृतन्यात्) जो सेनासे हमारा पराभव करना चाहता है, (यः मनसा) जो मनसे हमारा अनिष्ट चाहता है, (अभिदासात्) जो हमें दास या गुलाम बनाना चाहता है, (वधेन) जो वध, कतल, कर हमें कष्ट पहुंचाना चाहता है, हे (पूर्वकृत्वरि) पहिलेसेहि शत्रुनाश करनेवाली मातृभूमि ! (तं रन्धय) उसका नाश कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि ! जो हमसे शब्दोंद्वारा द्वेष करते हैं, जो हमारे वैरी सेना ले हमपर चढाई कर हमें जीतना चाहते हैं, जो हमारा नाश करनेके लिये टपे बैठे हैं, जो हमें परतन्त्र और गुलाम बनाना चाहते हैं, जो मनसे हमारा अनिष्ट सोचते रहते हैं, हमारे उन सब शत्रुओं का पूर्ण रूपसे सत्यानाश कर ॥ १४ ॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. पृतन्यात्– सेनासे हमला करे ।

२. अभिदासात्– नाश करे, दास बनावे ।

३. द्वेषत्– द्वेष करे ।

४. रन्ध्– नाश करना, समाप्त करना, संपूर्ण करना ।

O (पृथिवी) earth ! O (पूर्वकृत्वरि भूमे) prior-acting mother-land ! (यः) who (नः द्वेषत्) hates us, (यः) who (पृतन्यात्) fights against us, (यः) who (अभिदासात्) threatens

us (मनसा) with mental thoughts and (यः वधेन) with deadly weapon, (रन्धयः) annihilate (तं) him.

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

पदानि— त्वत्। जाताः। त्वयि। चरन्ति। मर्त्याः। त्वम्। बिभर्षि। द्विऽपदः। त्वम्। चतुःऽपदः। तव। इमे। पृथिवि। पञ्च। मानवाः। येभ्यः। ज्योतिः। अमृतम्। मर्त्येभ्यः। उत्ऽयन्। सूर्यः। रश्मिऽभिः। आतनोति ॥१५॥

अर्थ— हे (पृथिवी) हमारी मातृभूमि! जो (मर्त्याः) मनुष्य (त्वज्जाताः) तुम्हारेही में पैदा हुए हैं, (त्वयि चरन्ति) तुम्हारेहीमें चलते फिरते हैं, जिन (द्विपदः) दो पांववालों को और (चतुष्पदः) चौपायोंको (त्वं बिभर्षि) धारणपोषण करती हो, (येभ्यः मर्तेभ्यः) जिन मनुष्योंके लिये (अमृतम्) जीवनका हेतुभूत (ज्योतिः) तेज (उद्यन् सूर्यः रश्मिभिः) उदित हुआ सूर्य किरणों से (आतनोति) विस्तार करता है, (इमे) ये हम (पंच मानवा) पांच प्रकारके मनुष्य (तव) तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा करते हैं ॥१५॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि! जो हम लोग तेरेसे उत्पन्न हो, तेरेही आधारसे अपने सम्पूर्ण व्यवहार करते हैं; जो सम्पूर्ण पशु, पक्षी, मनुष्य



और अन्य सम्पूर्ण प्राणिमात्र को तू आधार देकर पालतीपोसती है; जिस हमारे जीवनके लिए यह देदीप्यमान सूर्य अपनी अमृतमय किरणों को चारों ओर फैलाता रहता है; वे हम पांच प्रकारके मनुष्य विद्वान्, शूरवीर, व्यौपारी, कारीगर और सेवावृत्तिवाले मनुष्य तुम्हारी सेवा करने की इच्छा करते हैं॥ १५

(त्वज्जाताः) Born from thee (मर्त्याः त्वयि चरन्ति) mortals move about upon thee, (त्वं) thou (बिभर्षि) bearest (द्विपदः त्वं चतुष्पदः) bipeds and quadrupeds; (पृथिवि) O motherland! (तव) Thine are (इमे पञ्च मानवाः) these five races of men, (येभ्यः मर्त्येभ्यः) for whom, mortals, (उद्यन् सूर्यः) the rising sun (आतनोति) extends (रश्मिभिः) with his rays (अमृतं ज्योतिः) immortal light.

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

पदानि– ताः। नः। प्रऽजाः। सम्। दुह्रताम्। सम्ऽअग्राः। वाचः। मधु। पृथिवि। धेहि। मह्यम् ॥१६॥

अर्थ– हे (नः पृथिवि!) हमारी मातृभूमि! हम सब लोग तुम्हारी (ताः प्रजाः) प्रजा (समग्राः) सब (मधु) मधुर प्रेमपूर्ण (वाचः) वाणी (संदुह्रताम्) एकत्र होकर बोलें, (मह्यम्) हमको भी मधुर वचन बोलने की शक्ति दे ॥१६॥

भावार्थ– हे हमारी मातृभूमि! हम सब लोग आपसमें जो बातचीत करें, वह सत्य, हितकारी, मधुर और परस्पर प्रेमयुक्त हो; झूठ अहितकारी तथा कटु न हो; हम सब लोगोंको एकत्र हो आपसमें प्रेमसे मीठा वचन बोलने की शक्ति दे ॥१६॥

O (पृथिवि) motherland ! Let (ताः समग्राः प्रजाः) all these creatures without exception, (सं दुह्रतां) together yield from it to us, (मह्यं धेहि) and do thou assign to me (वाचो मधु) the honey of speech.

वि॒श्वस्वं॑ मा॒तर॒मोष॑धीनां ध्रु॒वां भूमिं॑ पृथि॒वीं धर्म॑णा धृ॒ताम् । शि॒वां स्यो॒नामनु॑ चरेम वि॒श्वहा॑ ॥१७॥

पदानि– वि॒श्वऽस्व॑म् । मा॒तर॑म् । ओष॑धीनाम् । ध्रु॒वाम् । भूमि॑म् । पृ॒थि॒वीम् । धर्म॑णा । धृ॒ताम् । शि॒वाम् । स्यो॒नाम् । अनु॑ । च॒रे॒म । वि॒श्वहा॑ ॥१७॥

अर्थ— (विश्वस्वम्) सब (ओषधीनाम्) वनस्पति, वृक्ष, लता आदि की (मातरं ध्रुवां पृथिवीम्) यह विस्तीर्ण, लम्बी, चौडी, स्थिर माता पृथिवी (धर्मणा) सत्य ज्ञान, शूरता, वीरता आदि धर्मसे (धृताम्) पालित पोषित और (शिवाम्) कल्याणमयी (स्योनाम्) सुखकी देनेवाली (भूमिम्) मातृभूमि की (विश्वहा) सदा (अनुचरेम) हम सेवा करें ॥१७॥

भावार्थ-- जिसमें सब तरह की उत्तम औषधियां और वनस्पतियां उपजती हैं; जो बडी लम्बी चौडी और स्थिर है; विद्या, शूरता, सत्य, स्नेह आदि सदाचार और सद्गुणयुक्त पुरुष जिसकी रक्षा करते हैं; जो कल्याण-मयी और सब प्रकार के सुखसाधन हमें देती है; उस मातृभूमिकी हम सदा सेवा करें ॥१७॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. विश्वस्वं- सर्वस्व, सबका उत्पादन करनेवाली ।
२. धर्मणा- धर्मसे, कर्तव्यसे, नियमपालनसे ।
३. अनुचर्- सेवा करना ।
४. विश्वहा- सर्वदा ।

May we (विश्वहा) always (अनुचरेम) serve our (भूमिं) motherland, who is (विश्वस्वं) all-producing, (ओषधीनां मातरं) mother of herbs, (ध्रुवां) fixed, (पृथिवीं) spacious, (धर्मणा धृतां) maintained by doing our duties, (शिवां) the auspicious and (स्योनां) the pleasant.

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे। महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥

पदानि- महत् । सधऽस्थम् । महती । बभूविथ । महान् । वेगः । एजथुः । वेपथुः । ते । महान् । त्वा । इन्द्रः । रक्षति । अप्रऽमादम् । सा । नः । भूमे । प्र । रोचय । हिरण्यस्यऽइव । सम्ऽदृशि । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥१८॥

अर्थ— हे मातृभूमि! तुम हम सबोंको (महत् सधस्थम्) एक साथ मिलकर रहनेका स्थान हो, इस तरह तुम (महती बभूविथ) बडी होती रही हो। (ते) तुम्हारा (एजथुः वेपथुः) हिलना डोलना

(महान्) बडा (वेगः) वेग वा गतियुक्त होता है। इस प्रकार की (त्वाम्) तुझको (महान् इन्द्रः) शूर इन्द्र (अप्रमादम्) प्रमादरहित होकर (रक्षति) रक्षा करते हैं। (भूमे) हे मातृभूमि! (सा) सो तुम (हिरण्यस्य इव संदृशि) सोनेकी तरह चमकनेवाली बन और (नः) हमें (कश्चन) कोई भी (मा द्विक्षत) वैरभावसे न देखें ॥१८॥

भावार्थ-- हे हमारी मातृभूमि ! तू हम सबोंको एकत्र रहनेका स्थान देती है; हम सब लोगोंका समावेश होनेयोग्य तेरा विस्तार है; तू आकाश में हिलते डोलते जिस वेगसे जाती है, वह वेग बहुतही बडा है; ज्ञानी, शूर वीर, उत्साही और ऐश्वर्यशाली शत्रुको नाश करनेवाले वीर पुरुष ही चौकसीके साथ तेरी रक्षा कर सकते हैं; अनाडी, भीरु और विगतधैर्य नहीं कर सकते; तु स्वयं सोनेके समान तेजस्वी है; हमें भी तेजस्वी कर और ऐसा कर कि हममेंसे कोई भी परस्परका द्वेष न करे, सब एक मतसे व्यवहार करें ॥१८॥

O (भूमे) mother-land ! (बभूविथ) thou hast become our (महत्) vast and (महती) great (सधस्थं) abode. (ते महान् वेगः) Great is thy motion, (एजथुः वेपथुः) action and movement. (महान् इन्द्रः) The great Lord (त्वा रक्षति) guards thee (अप्रमादं) with unceasing care. (सा नः प्ररोचय) So make us shine (हिरण्यस्य इव संदृशि) with the splendour of gold (मा नो द्विक्षत कश्चन) and let no one so ever hate us.

अ॒ग्निर्भूम्या॒मोष॑धीष्व॒ग्निमापो॒ बिभ्र॑त्य॒ग्निरश्म॑सु ।
अ॒ग्निर॒न्तः पुरु॑षेषु॒ गोष्वश्वे॑ष्व॒ग्नयः॑ ॥१९॥

पदानि- अ॒ग्निः । भूम्या॑म् । ओष॑धीषु । अ॒ग्निम् । आपः॑ । बि॒भ्र॒ति । अ॒ग्निः । अश्म॑ऽसु । अ॒ग्निः । अ॒न्तः । पुरु॑षेषु । गोषु॑ । अश्वे॑षु । अ॒ग्नयः॑ ॥१९॥

अर्थ—(भूम्याम्) पृथिवी के मध्यभागमें (अग्नि) अग्नि हैं; (ओषधीषु) औषधियोंमें (अग्निः) अग्नि है; जिन औषधियोंके सेवनसे अन्न पचता है, दीपन होकर भूख लगती है, (आपः) जल (अपि) जब मेघरूपमें होता है, तब वह अग्नि (बिभ्रति) विद्युत् के रूपमें अग्निको धारण करता है। (अश्मसु) पत्थरों में चकमक इत्यादि में (अग्निः) अग्नि है, (पुरुषेषु) मनुष्योंमें (अन्तः) भीतर जाठराग्निके रूपमें (अग्नि) अग्नि हैं, (गोषु अश्वेषु अपि) गऊ घोडे आदि पशुओं में (अग्निः) अग्नि है, जिससे उनका भोजन पचता है ॥१९॥

भावार्थ-- सब पदार्थ अग्निमय हैं। उस अग्निद्वारा भूमि, औषधि, वनस्पति, जल (मेघादिक) पत्थर, मनुष्य, गाय, घोडे इत्यादि प्राणियोंके शरीर जैसे तेजस्वी दीखते हैं, उसी प्रकार हम मनुष्य जो उन सब पदार्थों के भोक्ता हैं, अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर और वीर्यरूपी अग्नि को शरीरमें प्रवेश कर सबसे अधिक तेजस्वी हों ॥१९॥

(भूम्यां अग्निः) There is fire in the earth, and (ओषधीषु) in the plants, (अग्निं आपः बिभ्रति) the waters hold fire in them and (अश्मसु अग्निः) there is fire in the stones. (पुरुषेषु अन्तः अग्निः) The fire is within men and (गोषु अश्वेषु अग्नयः) the fires abide in cows and in horses.

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥

पदानि— अग्निः । दिवः । आ । तपति । अग्नेः । देवस्य । उरु । अन्तरिक्षम् । अग्निम् । मर्तासः । इन्धते । हव्यऽवाहम् । घृतऽप्रियम् ॥२०॥

अर्थ— (दिवः) आकाशमें (अग्निः) सूर्यके रूप में अग्नि है (आतपति) जो सब ओर प्रकाश देता हुआ तप रहा है। (देवस्य अग्नेः) प्रकाशमय उस अग्निके प्रकाशसे (उरु) बडा (अन्तरिक्षं) आकाश प्रकाशित होता है, इस तरह अनेक रूपमें अग्नि विद्यमान है। (हव्यवाहम्) होम की हुई आहुतिका ले जानेवाला (घृत-प्रियं) घी को प्यार करनेवाला (अग्नि) अग्नि [ऋतुओं के बदलनेपर [रोगों के नाशके लिये] भौतिक (मर्तासः) मनुष्य लोग (इन्धते) दीपित करते हैं ॥२०॥

भावार्थ— आकाशमें चारों ओर अपना प्रकाश फैलानेवाली सूर्य नाम की एक बडी भारी अग्नि है। उससे उत्पन्न हुए द्रव्यको हवनद्वारा चारों ओर फैलानेके लिये तथा सुखकी प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये मनुष्य घृत आदिसे होम करते हैं। उस अग्निमें हम भी दिनरात हवन करते हैं॥२०॥

(अग्निः दिवः आतपति) The fire sends heat from the sky and (देवस्य अग्नेः उरु अन्तरिक्षम्) the wide atmosphere belongs to god-fire also; (मर्तासः) mortals (इन्धते) kindle (अग्निं) fire, who is (हव्यवाहं) oblation-bearer and (घृतप्रियं) ghee-lover.

अ॒ग्निवा॑साः पृथि॒व्य॑सित॒ज्ञूस्त्विषी॑मन्तं॒ संशि॑तं मा कृणोतु ॥२१॥

पदानि—अ॒ग्निऽवा॑साः । पृ॒थि॒वी । अ॒सि॒त॒ऽज्ञूः । त्विषि॑ऽमन्तम् । सम्ऽशि॑तम् । मा । कृ॒णो॒तु ॥२१॥

अर्थ— (अग्निवासाः) अग्नि से व्याप्त (असितज्ञूः) काले कज्जल से जो जाना जाय, वह अग्नि (पृथिवी असि) पृथिवी

के रूप में रहनेवाला (मां) मुझको (त्विषीमन्तं) प्रकाशयुक्त (कृणोतु) करे ॥२१॥

भावार्थ— जिस हमारी मातृभूमि में चारों ओर अग्नि व्याप्त है और जिस भूमि का वर्ण काला है, वह भूमि हमारे ज्ञान, कीर्ति और यश को बढानेवाली हो ॥२१॥

Let the (पृथिवी) earth, who is (अग्निवासाः) surrounded with fire and therefore it is (असितज्ञूः) dark-knead, (मा संशितं कृणोतु) make me ingenious and (त्विषीमन्तं) brilliant.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **अग्निवासाः**= अग्नि का वस्त्र, अथवा अग्निसे जो घेरी हुई है।

२. **असितज्ञूः**= अग्नि जहां जलती है, वहां काला धब्बा होता है, वैसी कृष्ण वर्ण।

३. **संशित**= तीक्ष्ण, सूक्ष्म, सूक्ष्म बुद्धिसे युक्त।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्। भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः। सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

पदानि— भूम्याम्। देवेभ्यः। ददति। यज्ञम्। हव्यम्। अरम्ऽकृतम्। भूम्याम्। मनुष्याः। जीवन्ति। स्वधया। अन्नेन। मर्त्याः। सा। नः। भूमिः। प्राणम्। आयुः। दधातु। जरत्ऽअष्टिम्। मा। पृथिवी। कृणोतु ॥२२॥

अर्थ-- मनुष्य (भूम्यां अरंकृतं) जिस भूमिमें अलंकृत सुसंस्कृत (हव्यम्) आहुतियुक्त (यज्ञं) यज्ञ (देवेभ्यः) देवताओंको (ददति) देते हैं। इससे जिस भूमिमें (स्वधया अन्नेन) उत्तम अन्न खाने पीनेकी वस्तुसे (मर्त्याः) मरणधर्मा मनुष्य (मनुष्याः जीवन्तिः) जीते हैं। (सा नो भूमिः प्राणं आयुः) वह भूमि हमें बल आयु (दधातु) दे और वही भूमि (मा) मुझे (जरदष्टि) अच्छी वृद्धि या उन्नति (कृणोतु) करनेवाली हो ॥२२॥

भावार्थ— जिस हमारी भूमि में मनुष्य यज्ञ करते हैं और उसमें उत्तम उत्तम पदार्थों का हवन कर के वायु और जल आदि को शुद्ध करते हैं, जिस भूमि में यज्ञोंके कारण उत्तम वृष्टि होकर विपुल अन्न उपजता है, जिसको खाकर मनुष्य आनन्द से निवास करते हैं, वह मातृभूमि हमको उत्तम प्राण और पूर्ण आयुष्य देनेवाली हो ॥२२॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. स्वधा= अन्न, जिससे शरीरकी धारणा होती है।

२. जरदष्टि= वृद्ध अवस्था तक दीर्घ आयु।

(भूम्यां) On this earth (यज्ञं ददति) men offer sacrifice and (अरंकृतं हव्यं) duly prepared oblation (देवेभ्यः) to the deities. (मर्त्याः मनुष्याः) mortal men (भूम्यां जीवन्ति) live upon this earth (स्वधया अन्नेन) by self-supporting food. May (सा भूमिः) this earth (प्राणं दधातु) grant us breath, (आयुः) long life and let (पृथिवी) this earth (मा जरदष्टिं कृणोतु) give me life of longest duration.

यस्ते॑ ग॒न्धः पृ॑थिवि सं॑ब॒भूव॒ यं बिभ्र॒त्यो॑षधयो॒ यमाप॑ः । यं ग॑न्ध॒र्वा अ॑प्स॒रस॑श्च भेजि॒रे तेन॑ मा सुर॒भिं कृ॑णु मा नो॑ द्विक्षत॒ कश्च॒न ॥२३॥

पदानि– यः । ते॒ । ग॒न्धः । पृ॒थि॒वि॒ । सम्ऽब॒भूव॑ । यम् । बिभ्र॑ति । ओष॑धयः । यम् । आप॑ः । यम् । ग॒न्ध॒र्वाः । अ॒प्स॒रस॑ः । च॒ । भे॒जि॒रे । तेन॑ । मा॒ । सु॒र॒भिम् । कृ॒णु॒ । मा । न॒ः । द्वि॒क्ष॒त॒ । कः । च॒न ॥२३॥

अर्थ—हे (पृथिवि ! यस्ते गन्धः संबभूव) पृथिवी, जो तेरे में से गन्ध पैदा होती है, (यं) जिस गन्ध को (ओषधयः बिभ्रति) ओषधियां धारण करती हैं, (यः) जिसे (आपः बिभ्रति) जल धारण करता है, जिसे (गन्धर्वा) गंधर्व और (अप्सरसः च) अप्सराएँ धारण करती हैं, (यं गंधं) जिस गंधका (भेजिरे) सुख भोग (तेन) सुगंधिसे (मा) मुझको (सुरभिं) सुगंधियुक्त (कृणु) करे । (नः) हम लोगोंमें (कश्चन) कोई भी (मा द्विक्षत) किसी से द्वेष न करे, सब लोग आपस में मित्रता से रहें ॥२३॥

भावार्थ—हे मातृभूमि ! जो तुम्हारे में उत्तम सुगन्धि है, वह औषधि और वनस्पतियों में प्रगट होती है, उसी सुगन्धि को सूर्य अपनी किरणों से उद्दीपन करते हैं । हमें उस उत्तम सुगन्धि से भूषित करो और हमारे बीच कोई आपसमें किसीसे भी वैर न करे, सब लोग परस्पर मैत्रीभावसे रहें ॥ २३॥

(यः गन्धः) The scent that (सं बभूव) hath risen (ते) from Thee, O (पृथिवि) Earth ! the fragrance, (यं) which

(ओषधयः) plants and (यं आपः) waters (बिभ्रति) carry, (यं गन्धर्वाः अप्सरसः भेजिरे) which is shared by Gandharvas & Apsarases, (तेन) with that (कृणु) do Thou make (मा) me (सुरभिं) fragrant; (मा नो द्विक्षत कश्चन) let no one hate us.

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्यायां विवाहे। अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४॥

पदानि– यः। ते। गन्धः। पुष्करम्। आऽविवेश। यम्। सम्ऽजभ्रुः। सूर्यायाः। विवाहे। अमर्त्याः। पृथिवि। गन्धम्। अग्रे। तेन। मा। सुरभिम्। कृणु। मा। नः। द्विक्षत। कः। चन ॥२४॥

अर्थ– हे पृथिवि (यः ते गन्धः पुष्करं) जो तुम्हारी गंध कमलमें (आविवेश) प्रविष्ट हुई है, (अग्रे) पहिले (यं गन्धं अमर्त्याः) जिस गन्ध को वायु आदि देवता (सूर्यायाः) उषाके (विवाहे) विवाह के समय (संजभ्रुः) धारण करते हैं, (तेन मां सुरभिं कृणु) उस सुगन्धि से हमें सुगन्धित करो। (कश्चन) कोई भी (नः) हम लोगों से (मा द्विक्षत) द्वेष न करे ॥२४॥

भावार्थ— हे मातृभूमि ! जो सुगन्धि तुम्हारे कमलोंमें है, सूर्योदयके समय जिसे वायु ले जाती है, उस सुगन्धि से हमें सुगन्धित करो। हममें कोई किसी से द्वेष न करे। हम में सब का एक दूसरे के साथ स्नेह बढे और हम सब समाज के लिये हितकारी हों ॥२४॥

(ते गन्धः) Thy scent (यः) which (आविवेश) entered (पुष्करं) into the lotus, the scent, (यं) which (संजभ्रुः) they brought together (सूर्यायाः विवाहे) at surya's wedding, the (गन्धं) scent which was collected by (अमर्त्याः) the immortals, O (पृथिवि) Earth! (अग्रे) in the beginning, (तेन) by that (मा सुरभिं कृणु) do thou make me odorous; (मा नो द्विक्षत कश्चन) let no one hate me.

यस्ते॑ ग॒न्धः पुरु॑षेषु स्त्री॒षु पुं॒सु भगो॒ रुचिः॑ ।
यो अश्वे॑षु वी॒रेषु॒ यो मृ॒गेषू॒त ह॒स्तिषु॑ ।
क॒न्या॑यां॒ वर्चो॒ यद् भू॑मे॒ तेना॒स्माँ अपि॒ सं सृ॑ज॒ मा नो॑ द्विक्षत॒ कश्च॒न ॥२५॥

पदानि– यः । ते॒ । ग॒न्धः । पुरु॑षेषु । स्त्री॒षु । पुम्ऽसु॑ । भगः॑ । रुचिः॑ । यः । अश्वे॑षु । वी॒रेषु॑ । यः । मृ॒गेषु॑ । उ॒त । ह॒स्तिषु॑ । क॒न्या॑याम् । वर्चः॑ । यत् । भू॒मे॒ । तेन॑ । अ॒स्मान् । अपि॑ । सम् । सृ॒ज॒ । मा । नः॒ । द्वि॒क्षत॒ । कः । च॒न ॥२५॥

अर्थ— हे (भूमे) भूमि, (यः ते गन्धः वीरेषु पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगः) वीर पुरुषों में, स्त्रियों में, साधारण पुरुषोंमें जो सुगंध कान्ति है, (यः अश्वेषु उत मृगेषु हस्तिषु) जो घोडों में, चौपायों में, हाथियों में, (यत् वर्चः) जो तेजरूप है, (कन्यायां) बिना ब्याही कन्याओं में जो तेज है, (तेन) उस दिव्य तेजसे (अस्मान् अपि) हममें भी वैसाही तेज (संसृज) पैदा कर दे। (कश्चन मा द्विक्षत) हम में कोई किसी से द्रोह न करें ॥२५॥

भावार्थ— हे मातृभूमि ! वीर पुरुषों तथा साधारण स्त्रीपुरुषों में, हाथी, घोडे, चौपाये आदि में, ब्रह्मचारियों ब्रह्मचारिणी कन्याओं में जो तेज है, वह हममें भी बचपनसे ही हो। हम में कोई भी किसी से द्रोह न करे ॥२५॥

(यः गन्धः) What scent (ते) of thine is (पुरुषेषु स्त्रीषु) in men and in women; what (भगः) luck and (रुचिः) light is (पुंसु) in men, (यः) what is (अश्वेषु वीरेषु) in horses and in heroes, (यः मृगेषु) what is in wild animals (उत हस्तिषु) and in elephants, (यत् वर्चः) what splendor, (भूमे) O earth! (कन्यायां) is in a maiden, (तेन अस्मान् अपि संसृज) with that do thou unite us also, (मा नो द्विक्षत कश्चन) let no one hate us.

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता। तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥

पदानि— शिला। भूमिः। अश्मा। पांसुः। सा। भूमिः। सम्ऽधृता। धृता। तस्यै। हिरण्यऽवक्षसे। पृथिव्यै। अकरम्। नमः ॥२६॥

अर्थ— जो (शिला अश्मा पांसुः) शिला, पर्वत, पत्थर और धूलियुक्त (भूमिः) भूमि है, (सा भूमिः) वह भूमि हम लोगोंसे विद्या, विज्ञान और वीरता से (धृता) भली भांति रक्षित हुई, (संधृता) अच्छी तरह योग्यताके साथ सुरक्षित हुई कहलावेगी; (तस्यै हिरण्यवक्षसे) उस भूमि को जिसमें सोनेकी खान है, हम सब (नमः अकरं) नमस्कार करते हैं ॥२६॥

भावार्थ-- जिस हमारी मातृभूमिके ऊपर शिला, पत्थर और धूल है और जिसके भीतर सुवर्ण, रत्नादिक अमूल्य पदार्थ बहुतसे हैं, उस मातृ-भूमि को हम नमस्कार करते हैं। जब तक ज्ञान, शौर्य आदि गुण हममें बने रहते हैं, तभी तक हमारी मातृभूमिका संरक्षण है, इसलिये हमको इस प्रकार आचरण करना चाहिये कि ये गुण हममें सर्वदा बने रहें और हमसे सदा मातृभूमिकी रक्षा होती रहे ॥२६॥

(शिला) Rock, (अश्मा) stone, (पांसुः) dust and (भूमिः) earth is (सा भूमिः) this earth. When this land is (संधृता) held collectively (धृता) is realy held. (नमः अकरं) I have paid homage (तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्यै) to that gold-breasted land.

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७॥

पदानि-- यस्याम्। वृक्षाः। वानस्पत्याः। ध्रुवाः। तिष्ठन्ति। विश्वहा। पृथिवीम्। विश्वऽधायसम्। धृताम्। अच्छऽआवदामसि ॥२७॥

अर्थ-- (यस्यां) जिसमें (वानस्पत्याः) वनस्पति (वृक्षाः) पेड और लता आदि (विश्वहा) सदा (ध्रुवाः) स्थिर (तिष्ठन्ति) रहते हैं, (विश्वधायसं) पूर्वोक्त गुणोंसे जो सबको धारण करनेवाली है, (धृताम्) धारण की गई अर्थात् भली भांति सुरक्षित रखी गई, (पृथिवीं अच्छ) उस पृथिवीकी हम मुख्यतया (आवदामसि) प्रशंसा गाते हैं ॥२७॥

भावार्थ— जिस हमारी मातृभूमिमें वृक्ष और वनस्पति बहुतायत से हैं और सब स्थिर रहते हैं, जो अपने अनेक ऊपर कहे हुए गुणोंसे भरी पूरी है, और सबका आधार है, हम से अच्छी तरह सुरक्षित रखी गई उस पृथिवी को हम प्रेमसहित स्तुति गाते हैं ॥२७॥

(अच्छ आवदामसि) We praise this (विश्वधायसं) all-supporting (पृथिवीं) land which is (धृतां) held together collectively and (यस्यां) on whom (वृक्षाः) trees and (वानस्पत्याः) forests (विश्वहा) always (तिष्ठन्ति) stand (ध्रुवाः) firm.

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि
भूम्याम् ॥२८॥

पदानि— उत्ऽईराणाः । उत । आसीनाः । तिष्ठन्तः । प्रऽक्रामन्तः । पत्ऽभ्याम् । दक्षिणऽसव्याभ्याम् । मा । व्यथिष्महि । भूम्याम् ॥२८॥

अर्थ— (उदीराणाः) चलते फिरते (उत आसीनाः) बैठे हुए (तिष्ठन्तः) खडे हुए (दक्षिणसव्याभ्यां पद्भ्यां प्रक्रामन्तः) दाहिने या बांये पांवसे टहलते हुए (भूम्यां मा व्यथिष्महि) भूमिमें हम किसीको दुःख न दें ॥२८॥

भावार्थ— हम किसीके दुःखका कारण न बनें ॥२८॥

Let us (मा) not (भूम्यां व्यथिष्महि) hurt our land (दक्षिणसव्याभ्यां पद्भ्यां) with our right and left feet, while

(उदीराणाः) rising, (उत आसीनाः) sitting, (तिष्ठन्तः) standing and (प्रक्रामन्तः) going about.

विमृग्वरीं पृथिवीमा वंदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् । ऊर्जं पुष्टं बिभ्रती- मन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥

पदानि— विमृग्वरीम् । पृथिवीम् । आ । वदामि । क्षमाम् । भूमिम् । ब्रह्मणा । वावृधानाम् । ऊर्जम् । पुष्टम् । बिभ्रतीम् । अन्नऽभागम् । घृतम् । त्वा । अभि । नि । सीदेम । भूमे ॥२९॥

अर्थ-- (विमृग्वरीं) विशेष खोजनेके योग्य (ब्रह्मणा) परमात्मासे (वावृधानां) बढाई गइ (ऊर्जं) बल बढानेवाली (पुष्टं) पुष्टि करनेवाली (घृतं अन्नभागं च) घी और खानेके पदार्थ अन्न आदि (बिभ्रतीं) धारण करनेवाली (पृथ्वीं) लम्बी चौडी (क्षमां) प्राणिमात्र के निवासयोग्य (भूमिं) मातृभूमिसे (आ- वदामि) प्रार्थना करते हैं । हे (भूमे) हमारी मातृभूमि । (त्वां) तुम्हारा (अभिनिषीदेम) हम आसरा लें ॥२९॥

भावार्थ— जिसकी ऊपर की सतहको तलाश करनेसे अनेक लाभ हो सकते हैं, जिसे अनन्त शक्तिमान् परमेश्वरने अपनी शक्तिसे धारण किया है, बल बढानेवाले घृत और पुष्टिकारक अनेक भोजनके पदार्थ अन्न आदिको जो उत्पन्न करती है; जो लंबी चौडी और प्राणिमात्रके रहनेके योग्य है, उस भूमिसे हम प्रार्थना करते हैं कि, हे मातृभूमि ! तुम हमें सहारा दो ॥२९॥

(आ वदामि पृथिवीं) I praise my land who is (विमृग्वरीं) purifier, (क्षमां) patient, (ब्रह्मणा वावृधानां भूमिं) and grows strong by knowledge. (भूमे) O earth! (त्वा अभिनिषीदेम) we sit down upon Thee, who (बिभ्रतीं) bears (ऊर्जं) refreshing (पुष्टं) and nurishing (अन्नभागं) share of food and (घृतं) ghee.

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः । पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि॥३०

पदानि– शुद्धाः । नः । आपः । तन्वे । क्षरन्तु । यः । नः । सेदुः । अप्रिये । तम् । नि । दध्मः । पवित्रेण । पृथिवि । मा । उत् । पुनामि ॥३०॥

अर्थ-- हे (पृथिवि ! नः तन्वे) हमारे शरीरको शुद्धिके लिये (शुद्धाः आपः) निर्मल जल, (क्षरन्तु) बहा करे; (यः नः) जो हमको (अप्रिये) अनिष्ट है या प्रिय नहीं है, (सेदुः) उसे अलग करते हैं, (पवित्रेण) जो पवित्र है, (मा उत्पुनामि) उससे मैं अपने आपको पवित्र करता हूं ॥३०॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभुमि ! तुम चारों ओरसे हमारी शुद्धिके लिये निर्मल जल बहाती हो। जो कोई हमारा अप्रिय करनेकी इच्छा करे अथवा हमारा अनिष्ट करे, उसके साथ हम भी वैसाही वर्ताव करें और उत्कृष्ट उद्योग करके हम अपनी हर प्रकारसे उन्नति करें ॥३०॥

Let (शुद्धाः आपः) pure waters (क्षरन्तु) flow (नः तन्वे) for our body; (तं अप्रिये निदध्मः) we keep him in dislike



(यः नः सेदुः) who would attack us. O (पृथिवि) earth ! (मा उत्पुनामि) I do purify myself (पवित्रेण) with whatever purifies me.

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् । स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

पदानि– याः । ते । प्राचीः । प्रऽदिशः । याः । उदीचीः । याः । ते । भूमे । अधरात् । याः । च । पश्चात् । स्योनाः । ताः । मह्यम् । चरते । भवन्तु । मा । नि । पप्तम् । भुवने । शिश्रियाणः ॥३१॥

अर्थ— हे (भूमे !) मातृभूमि ! (याः ते प्राचीः) जो तुम्हारी पूर्व दिशा है, (याः उदीची) जो उत्तर की दिशा है, (याः ते प्रदिशः) जो तुम्हारी उपदिशा आग्नेयी, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान ये चार कोनेकी दिशाएं हैं, (याः ते अधरात्) जो तुम्हारे नीचे हैं, (याः ते पश्चात्) जो तुम्हारे पृष्ठभागमें या पीछे हैं, (ताः) उन सब दिशाओंमें (चरते) लोग चलते फिरते हैं; (मह्यं स्योनाः भवन्तु) मुझे सुख की देनेवाली हों, (भुवने) जिस देशमें हम (शिश्रियाणः) रहें (मा निपप्तं) कहीं हमारा अधःपात न हो ॥३१॥

भावार्थ—हे हमारी मातृभूमि ! तुम्हारी जो जो दिशाएं और उपदिशाएं हैं, उनमें सब मनुष्य तुम्हारे हित करनेवाले होवें–इसी प्रकार तेरे हितके लिये यत्न करते हुए हम भी उन सबका कल्याण करें, हम जहां कहीं रहें, अपनी योग्यता बढाते रहें, सुख से रहें और हमारा अधःपात कभी न हो ॥३१॥

O (भूमे) mother-land ! Let (या ते प्राचीः प्रदिशः) your eastern and (या उदीचीः) your northern directions, (याः ते अधरात्) your downwards or southern and (याः च पश्चात्) your westwards directions, be (ताः स्योनाः) propitious (मह्यं) to me while (चरते) I move upon thee. (मा नि पप्तं) Let me not fall down (भुवने शिश्रियाणः) while treading upon your ground.

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत । स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२॥

पदानि— मा । नः । पश्चात् । मा । पुरस्तात् । नुदिष्ठाः । मा । उत्तरात् । अधरात् । उत । स्वस्ति । भूमे । नः । भव । मा । विदन् । परिऽपन्थिनः । वरीयः । यावय । वधम् ॥३२॥

अर्थ— हे (भूमे ! पश्चात् नः मा नुदिष्ठाः) मातृभूमि ! जो तुम्हारे पृष्ठभाग हैं, वे हमारा नाश न करें, (मा पुरस्तात् मा उत्तरात् उत अधरात् मा नुदिष्ठाः) जो तुम्हारे पूर्व है, उत्तर है या नीचे है, वह भी हमारा नाश न करें, (स्वस्ति) हमारा कल्याण हो । (परिपन्थिनः) शत्रुलोग हमें (मा विदन्) न जानें (किञ्च) तथा उन शत्रुओंके (वधं) शस्त्र (वरीयः यावय) हमसे दूर चले जावें ॥३२॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि! हमें किसी प्रकारसे हानि न पहुंचे, सब तरहसे हमारी उन्नति ही हो । हमारी चालोंको हमारे शत्रु न समझ सकें और हमारे शत्रुओंके शस्त्र हमसे दूर रहें ॥३२॥

(नः मा नुदिष्ठाः) Drive us not (पश्चात् मा पुरस्तात्) from the west nor from the east, (मा उत्तरात् उत अधरात्) not from the north, nor from the south. (भूमे) O motherland ! (नः स्वस्ति भव) Be gracious unto us. (परिपन्थिनः मा विदन्) Let not the robbers find us; and (वधं वरीयः यावय) keep the deadly weapon away from us.

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

पदानि– यावत् । ते । अभि । विऽपश्यामि । भूमे । सूर्येण । मेदिना । तावत् । मे । चक्षुः । मा । मेष्ट । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ॥३३॥

अर्थ-- (भूमे मेदिना) हे हमारी मातृभूमि ! अपने प्रकाशसे आनन्द देनेवाले (सूर्येण) सूर्यसे (यावत् ते अभि विपश्यामि) जहांतक सब ओर हम तुम्हारे विस्तार को देखते हैं, (यावत् उत्तरां उत्तरां समां मे चक्षुः मा मेष्ट) तहांतक ज्यों ज्यों मेरी उमर बढती जाय मेरी इन्द्रियां नेत्र आदि अपना अपना काम करनेमें शिथिल न हों, अर्थात् कहींसे उनमें कमी न हो, अपनी पूरी उमर तक हम सब उत्तम कर्म करते रहें ॥३३॥

भावार्थ-- हे मातृभूमि ! जब तक हम प्रकाश और ज्ञान की सहायतासे तेरी बाहिरी, भीतरी स्थिति सूक्ष्म दृष्टिसे देखते रहें, तब तक हमारी बाहिरी इन्द्रियां और भीतरी बुद्धि अपना अपना काम करनेमें समर्थ रहें ॥३३॥

O (भूमे) motherland ! (यावत्) as much as (अभि विपश्यामि) I look upon (ते) thee (मेदिना सूर्येण) with the sun

as a friend, (तावत्) so far (मे चक्षुः मेष्ट) let not my sight fail (उत्तरां उत्तरां समां) through each succeeding year.

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे । मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

पदानि— यत् । शयानः । परिऽआवर्ते । दक्षिणम् । सव्यम् । अभि । भूमे । पार्श्वम् । उत्तानाः । त्वा । प्रतीचीम् । यत् । पृष्टीभिः । अधिऽशेमहे । मा । हिंसीः । तत्र । नः । भूमे । सर्वस्य । प्रतिऽशीवरि ॥३४॥

अर्थ—हे (भूमे) हमारी मातृभूमि ! (यत्) जब (शयानः) सोते हुए (दक्षिणं सव्यं पार्श्वं) दाहिने और बांये (अभिपर्यावर्ते) करवट लें (यत् त्वा) जब तुमपर (प्रतीचीं) पश्चिमकी ओर पांव कर (उत्तानाः पृष्टीभिः) पीठ नीचे कर (अधिशेमहे) शयन करें, उस स्थान में (सर्वस्य प्रतिशीवरि) सब लोगोंको सहारा देनेवाली (भूमे नः मा हिंसीः) हे हमारी मातृभूमि, हमारा नाश न कर॥३४॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि ! जिस समय हम तेरे भक्त विश्राम करने के लिये दाएं, बाएं अथवा सीधे तेरे ऊपर सोवें, उस समय तुम हमें आश्रय दो, जिससे कि हम बेखटके सोवें और कोई हमारा घात न कर सके ॥३४॥

O (भूमे) mother-land! (यत्) when (शयानः) I lie, I (अभिपर्यावर्ते) turn (दक्षिणं पार्श्वं) upon my right side and

(सव्यं) my left, and (यत्) when (उत्तानाः) we stretch at all our length (पृष्ठिभिः अधिशेमहे) we lay our ribs (त्वा) on thee (प्रतीचीं) westwards. (भूमे) O Mother-earth, (तत्र मा हिंसीः) do not injure us there, (सर्वस्य प्रतिशीवरि) thou who furnishest a bed for all.

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५॥

पदानि— यत् । ते । भूमे । विऽखनामि । क्षिप्रम् । तत् । अपि । रोहतु । मा । ते । मर्म । विऽमृग्वरि । मा । ते । हृदयम् । अर्पिपम् ॥३५॥

अर्थ—हे (भूमे) हमारी मातृभूमि ! (ते) तुम्हारेमें (यत् विखनामि) जो हल से जोत हम बोवें (तत् क्षिप्रं रोहत्) वह जल्द उगे और बढे। (विमृग्वरि) विशेष खोजनेके योग्य हमारी मातृभूमि ! (ते) तुम्हारे (मर्म) नाजुक स्थानोंमें किसी तरह की क्षति या चोट न पहुंचे और (ते अर्पिपं) तुम्हारे अर्पित (हृदयं) मन या चित्त (मा) दुःखित न हो ॥३५॥

भावार्थ—हे हमारी मातृभूमे ! जहां तुम ऊंची नीची हो उसे सम भूभाग पर जो हम बोवें वह जल्द उगे और बढे। तुम्हारे ऊंचानीचा रहनेसे हमारे अधःपात और गिर जानेकी संभावना है, सो तुम्हारे लिये यत्न करते हुए मर्मस्थान में चोट या क्षति न पहुंचे और तुम्हारे लिये जो हम अपना तन, मन अर्पित किये हैं कि तुम्हारी उन्नति करें सो दुःखित न हो, हम सदा प्रसन्नचित्त रहें ॥३५॥

O (विमृग्वरि भूमे) purifier! O mother-land! (यत् ते विखनामि) what I dig from thee, (तद् अपि क्षिप्रं रोहतु) let that grow quickly again. (मा ते मर्म अर्पिपं) Let me not pierce through thy vitals. (मा ते हृदयं) nor thy heart.

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः । ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६॥

पदानि— ग्रीष्मः । ते । भूमे । वर्षाणि । शरत् । हेमन्तः । शिशिरः । बसन्तः । ऋतवः । ते । विऽहिताः । हायनीः । अहोरात्रे इति । पृथिवि । नः । दुहाताम् ॥३६॥

अर्थ--हे (पृथिवी भूमे) विस्तृत मातृभूमि! (ते ग्रीष्मः वर्षाणि शरत् हेमन्तः शिशिरः वसन्तः) तम्हारे में जो गरमी, बरसात, शरत्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त (ऋतवः ते हायनीः) ये छः ऋतु वर्षभरमें (विहिताः) स्थापित की गई हैं और (अहोरात्रे) दिन तथा रात ये सब (नः दुहताम्) हमको सुख देनेवाले पदार्थ दें ॥३६॥

भावार्थ—हे मातृभूमि! छः ऋतु होनेका उत्तम गुण तुम्हारे ही में है। वर्षके ये छः ऋतु अपने अपने समयमें उपजे फलफूल आदिसे हमें सुख देते रहें, उन उन ऋतुके रात और दिन सब भांति हमें सुहावने हों ॥३६॥

(भूमे) O mother-land! O (पृथिवि) spacious land! Let (ते ग्रीष्मः) thy summer, (वर्षाणि) rainy season, (शरत्) autumn,

(हेमन्तः) winter, (शिशिरः) dewy frosts, (वसन्तः) spring, (ते विहिताः ऋतवः) thy arranged seasons, (हायनीः) years, and (अहोरात्रे) day and night (नः दुहातां) pour out for us in abundance.

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्व१न्तः । परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७॥

पदानि– या । अप । सर्पम् । विजमाना । विऽमृग्वरी । यस्याम् । आसन् । अग्नयः । ये । अप्ऽसु । अन्तः । परा । दस्यून् । ददती । देवऽपीयून् । इन्द्रम् । वृणाना । पृथिवी । न । वृत्रम् । शक्राय । दध्रे । वृषभाय वृष्णे ॥३७॥

अर्थ– (या विमृग्वरी) जो विशेष खोजनेके योग्य है, (विजमाना अप सर्पं) जो हिलती हुई चलती है, (ये अप्सु) जो मेघोंमें (अन्तः अग्नयः) विजलीके आकारमें अग्नि हैं, वे (यस्यां आसन्) जिसमें है, वह हमारी मातृभूमि (देव-पीयून्) देवोंके द्वेषकर्ता (दस्यून्) ज्ञानमार्गके उच्छेदक अनार्योंका नाशकर्ता (शक्राय) समर्थ (वृष्णे) वीर्ययुक्त (वृषभाय) बलवान करनेवालेको (दध्रे) धारण करती है और शत्रुको (परा ददति) दूर करती हुई (वृत्रं न) शत्रुका (इन्द्रं) नाश करनेवाले शूर वीरको (वृणाना) वरण करनेवाली अर्थात् अपनेमें मिलानेवाली हमारी मातृभूमि है ॥३७

भावार्थ— जो हमारी भूमि ऐसी है कि इसे जितना ही खोजते रहो इस में लाभदायक सार वस्तु मिलती रहें, हिलते, डोलते, चलते मेघोंमें बिजलीके आकारमें अग्नि जिसमें है, वह हमारी मातृभूमि सज्जनोंको दुःख देनेवाले दुष्टों का नाश करती है, वह हमारी मातृभूमि शत्रुनाशक वीरोंको ही अपने में धारण करती है ॥३७॥

(या) Who (विमृग्वरी) being a purifier and (विजमाना अप सर्पे) moving like a serpant, held (अग्नयः) fires (ये अप्सु अन्तः आसन्) that lie within the waters; (परा ददती) abandoning away (देवपीयून् दस्यून्) the god-insulting impious men, (वृणाना इन्द्रं) choosing Indra, as her Lord, (न वृत्रं) and not Vritra, (पृथिवी) the earth (दध्रे) hath clung to (वृषभाय वृष्णे शक्राय) the strong mighty and virile Lord.

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

पदानि— यस्याम् । सदोहविर्धाने इति सदःऽहविर्धाने । यूपः । यस्याम् । निऽमीयते । ब्रह्माणः । यस्याम् । अर्चन्ति । ऋक्ऽभिः । साम्ना । यजुःऽविदः । युज्यन्ते । यस्याम् । ऋत्विजः । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ॥३८॥

अर्थ— (यस्यां सदो) जिस भूमिमें घर है, (हविर्धाने) जिसमें हविष्य अर्थात् हवन के पदार्थ सुरक्षित रह सकते हैं. (यस्यां यूपः निमीयते) जिसमें यज्ञस्तम्भ रखे जाते हैं, (यस्यां यजुर्विदः ऋत्विजः) जिसमें यजुर्वेदके जाननेवाले ब्राह्मण यज्ञ करने या करानेवाले (यस्यां ब्रह्माणः ऋग्भिः साम्ना च अर्चन्ति) जिसमें ऋग्वेद और सामवेदके जाननेवाले ब्राह्मण ब्रह्मा बन परमात्मा का पूजन करते हैं और (सोमं पातवे) सोमपानके लिये (इन्द्राय युज्यन्ते) इन्द्रका पूजन करते हैं ॥३८॥

भावार्थ— जहां वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने बार बार यज्ञ किया है, इससे सिद्ध हुआ कि यह हमारी मातृभूमि पवित्र यज्ञभूमि है ॥३८॥

(यस्यां सदो हविर्धाने) On whom are the seat for meating and oblation-holder, (यस्यां यूपः निमीयते) on whom the sacrificial post is fixed, (यस्यां) on whom (ब्रह्माणः अर्चन्ति) the Learned (यजुर्विदः) knowing the sacrificial formulae, recite (ऋग्भिः) hymns and chant (साम्ना) their psalms and (यस्यां) on whom (ऋत्विजः) the priests (युज्यन्ते) are busy (सोमं पातवे इन्द्राय) that the Indra may drink soma.

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

पदानि— यस्याम् । पूर्वे । भूतऽकृतः । ऋषयः । गाः । उत् । आनृचुः । सप्त । सत्रेण । वेधसः । यज्ञेन । तपसा । सह । ॥३९॥

अर्थ-- (यस्यां पूर्वे भूत-कृतः) जिस भूमिमें पहिले अद्भुत काम करनेवाले (ऋषयः वेधसः) अतीन्द्रियार्थदर्शी और ज्ञानी (सप्त सत्रेण) सात प्रकारके सत्र आदि (यज्ञेन) यज्ञसे या सत्कार दानमान आदि उत्तम कामोंसे (तपसा) धर्मके करनेसे (गाः उदानृचुः) उत्तम वाणीके द्वारा स्तुति करते रहें ॥३९॥

भावार्थ-- हमारी मातृभूमि ऐसी है, जिसमें अतीन्द्रियार्थदर्शी सज्जनोंकी रक्षाके लिये बडे बडे काम करनेवाले धर्मानुष्ठान और ज्ञानमानसे सुशोभित सत्पुरुष हुए हैं, उस मातृभूमिकी हम स्तुति करते हैं ॥३९॥

(यस्यां) On whom (पूर्वे ऋषयः) the ancient Rishis, (भूतकृतः) who made the world, (गाः उत् आनृचुः) sang the praise of the cows and on whom (सप्त वेधसः) seven pious sages, (सत्रेण) with their sacrificial session together (यज्ञेन) with sacrifice (तपसा सह) and with penance do their sacrifice.

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

पदानि-- सा । नः । भूमिः । आ । दिशतु । यत् । धनम् । कामयामहे । भगः । अनुऽप्रयुङ्क्ताम् । इन्द्रः । एतु । पुरःऽगवः । ॥४०॥

अर्थ-- (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (यत् धनं) जो धन हम (कामयामहे) इच्छा करते हैं कि हमे मिल वह हमें (आदिशतु) दे, (भगः) ऐश्वर्यसंपन्न अपने ऐश्वर्यसे शूर वीर पुरुषों के (अनुप्रयुङ्क्ताम्) सहायक हो, (इन्द्रः) शत्रुके नाश करनेवाले वीरोंको (पुरोगवः) अगुआ होकर (एतु) शत्रुपर चढाई करे ॥४०॥

भावार्थ— जितने सुखकी हम इच्छा करें उतना मातृभूमि हमें दे। ऐश्वर्य और धनसम्पन्न लोग अपने ऐश्वर्य और धनसे वीरोंकी सहायता करें और वीर पुरुष धुरीण होकर धैर्यके साथ शत्रुओंके नाश करनेके लिये आगे बढ़ें ॥४०॥

(सा नो भूमिः) Let that our land (आदिशतु) assign to us (यत् धनं कामयामहे) what riches we desire. (भगः अनु प्रयुङ्क्तां) Let the Bhaga [God of wealth] share his burden, (इन्द्रः पुरोगवः एतु) and let Indra [the Lord] come to lead the way.

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥

पदानि— यस्याम् । गायन्ति । नृत्यन्ति । भूम्याम् । मर्त्याः । विऽऐलबाः । युध्यन्ते । यस्याम् । आऽक्रन्दः । यस्याम् । वदति । दुन्दुभिः । सा । नः । भूमिः । प्र । नुदताम् । सऽपत्नान् । असपत्नम् । मा । पृथिवी । कृणोतु । ॥४१॥

अर्थ—(यस्याम् भूम्यां मर्त्याः) जिस भूमिमें मनुष्य (गायन्ति) गाते हैं, (नृत्यन्ति) नाचते हैं, (व्यैलबाः) विशेष प्रेरित वीर लोग अपने राष्ट्रकी रक्षाके लिये (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं, (यस्यां

आक्रन्दः) जिसमें घोडोंके हिनहिनानेका शब्द होता है, (दुन्दुभिः च वदति) नगाडा वजता है,(सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (सपत्नान्) शत्रुओंको (प्रणुदताम्) दूर भगा दें, वह (पृथिवी) भूमि (मा) हमें (असपत्नं) शत्रुरहित (कृणोतु) करे ॥४१॥

भावार्थ— जिस भूमिमें आनन्द वधाइयां वज रही हैं, जहां लोग प्रसन्न रह नाचते हैं, गाते हैं और वीर लोग वीरताके उत्साहमें भरे अपने राष्ट्रकी रक्षाके लिये युद्ध करते-घोडे जहां हिनहिना रहे हैं, नगाडे वजते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे शत्रुओंको नाश कर हमें शत्रुरहित करे ॥४१॥

(सा नो भूमिः) Let that our motherland, (यस्यां भूम्यां) on whom (मर्त्याः गायन्ति नृत्यन्ति) men sing and dance (व्यैलबाः) with loud noise, (यस्यां युद्धयन्ते) on whom they fight, and shout their (आक्रन्दः) war-cry, (यस्यां दुन्दुभिः वदति) and the drum resound; (प्रणुदतां) drive off (सपत्नान्) ous rivals, and (पृथिवी मा असपत्नं कृणोतु) let our land make me free from my rivals.

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्यां इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

पदानि— यस्याम् । अन्नम् । व्रीहिऽयवौ । यस्याः । इमाः । पञ्च । कृष्टयः । भूम्यै । पर्जन्यऽपत्न्यै । नमः । अस्तु । वर्षऽमेदसे । ॥४२॥

अर्थ— (यस्यां व्रीहियवौ) जिसमें चावल, जौ, गेहूं आदि अन्न वहुत उपजते हैं, (अन्नं) खानेके पदार्थ जहां अधिकतासे हैं, (यस्यां इमा पञ्च कृष्टयः) जहां पांच प्रकारके लोग विद्वान्,

शूरवीर, व्यौपारी, कारीगर और नौकर रहते हैं, उस (वर्षमेदसे) बरसात होनेसे जहां अन्न आदि अच्छे उपजते हैं, (पर्जन्यपत्न्यै) पर्जन्य अर्थात् वर्षासे जिस भूमिका पालन होता है, उस (भूम्यै नमः अस्तु) मातृभूमिको नमस्कार है ॥४२॥

भावार्थ— जहां चावल, गेहूं, जौ आदि तथा और और खानेके पदार्थ बहुत होते हैं, जहां विद्वान्, शूर, व्यौपारी, कारीगर तथा सेवक लोग यह पांच प्रकारके मनुष्य आनन्दसे बसते हैं, जिस भूमिमें नियमित समयमें वृष्टि हो सम्पूर्ण धान्यादिक उत्पन्न हो लोगोंका योग्य पालन होता है, उस मातृभूमिको नमस्कार है ॥४२॥

(नमः अस्तु) Our homage be (भूम्यै) to this land (यस्यां अन्नं) on whom the food is (व्रीहियवौ) rice and barley, (यस्याः इमा पञ्च कृष्टयः) to whom these five races of men belong and who is (पर्जन्यपत्न्यै) wife of rain-cloud and (वर्षमेदसे) who fattens by the rain.

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते। प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

पदानि— यस्याः। पुरः। देवऽकृताः। क्षेत्रे। यस्याः। विऽकुर्वते। प्रजाऽपतिः। पृथिवीम्। विश्वगर्भाम्। आशाम्-आशाम्। रण्याम्। नः। कृणोतु ॥४३॥

अर्थ— (यस्याः देवकृतः पुरः) जिस मातृभूमिके नगर देवोंके बनाये या बसाये हैं, (यस्याः क्षेत्रे विकुर्वते) जिसके प्रत्येक

प्रान्तमें मनुष्य अपने अपने काम अच्छी तरहपर कर सकते हैं, (प्रजापतिः) प्रजाका पालक उस भूमिको जो (विश्वगर्भां) सब पदार्थों को पैदा करनेवाली है, (पृथिवीं) उस हमारी मातृभूमि को (आशां आशां) प्रत्येक दिशाओंमें (रण्यां) रमणीय करे ॥४३॥

भावार्थ— जिस मातृभूमिमें देवोंद्वारा बसाये अनेक नगर हैं, जिसके प्रत्येक प्रान्तमें मनुष्य अनेक प्रकारके अच्छे अच्छे उद्योगोंमें सदैव लगे रहते हैं, अर्थात् जो घनी वसी है, कोई भाग जिसका सूना और उजाड नहीं है, जहां सब तरहके पदार्थ पैदा होते हैं, उस भूमिको प्रजाका पालक पूर्ण करे, अर्थात् वहां विद्याका अधिक प्रचार करे और वह भूमि प्राकृतिक पदार्थों तथा सौंदर्य से सुसंपन्न रहे ॥४३॥

(यस्याः) Whose (पुरः) cities or castles are (देवकृताः) built by deities and (यस्याः क्षेत्रे विकुर्वते) in whose fields men work in various directions; let (प्रजापतिः) the protector of men (कृणोतु) make (पृथिवीं) this earth, (विश्वगर्भां) womb of every thing, (रण्यां) pleasant (नः) to us (आशां आशां) in every direction.

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे। वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४॥

पदानि— निऽधिम् । बिभ्रती । बहुऽधा । गुहा । वसु । मणिम् । हिरण्यम् । पृथिवी । ददातु । मे । वसूनि । नः । वसुऽदाः । रासमाना । देवी । दधातु । सुऽमनस्यमाना ॥४४॥

अर्थ-- (बहुधा गुहा) बहुत तरह की खानोंमें (वसु) धन, (मणिं) रत्न. हीरा, पन्ना आदि. (हिरण्यं) सोना, चांदी आदि (निधिं) संचय (बिभ्रती) धारण करनेवाली हमारी पृथिवी, (मे) हमको वह सब (ददातु) दे। (वसुदा) धन की देनेवाली (रासमाना) दान करनेवाली (देवी) देवतास्वरूप हमारा सब काम साधनेवाली (सुमनस्यमाना) जो हमसे शुभचित्त होकर (नः) हमको (वसूनि ददातु) धन दे ॥४४॥

भावार्थ- जिसमें रत्न और सुवर्ण आदिकी बहुतसी खानें हैं और जो हमें उत्तम धन रत्न आदि देती है, वह मातृभूमि सदा हमें धनकी देनेवाली हो॥४४॥

(देवी पृथिवी) May our goddess earth, who (बिभ्रती) holding (निधिं) treasures (गुहा बहुधा) hidden variously (मे ददातु) give me (वसु हिरण्यं मणिं) riches, gold and gems. Let (वसुदा) this giver of riches (वसूनि नः रासमाना) bestowing great possessions to us (ददातु) grant them (सुमनस्यमाना) with favouring mind.

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५॥

पदानि- जनम्। बिभ्रती। बहुऽधा। विऽवाचसम्। नानाऽधर्माणम्। पृथिवी। यथाऽओकसम्। सहस्रम्। धाराः। द्रविणस्य। मे। दुहाम्। ध्रुवाऽइव। धेनुः। अनपऽस्फुरन्ती ॥४५॥

अर्थ— (बहुधा नानाधर्माणं) बहुत तरहके धर्मोंके माननेवाले, (विवाचसम्) अनेक भाषा बोलनेवाले (जनं) जनसमुदायको (यथा ओकसं) जैसा एक घरमें कोई रहे उस तरह (बिभ्रती) धारण करनेवाली (अनपस्फुरन्ती) जिसका नाश न हो, इससे (ध्रुवा पृथ्वी) स्थिर भूमि (द्रविणस्य धाराः) हजारों तरह पर (मे) मुझको (धेनुः इव दुहां) धेनु जैसा दूध देती है, उसी तरह हमें धन दे ॥४५॥

भावार्थ-- अनेक प्रकारकी उन्नतिके धर्मोंको पालनेवाले, विविध भाषा बोलनेवाले लोगोंको आश्रय देनेवाली हमारी अविनाशी मातृभूमि जैसा गऊ दूध देती है, उस तरह हजारों पदार्थों की देनेवाली हो तथा धनकी देनेवाली हो ॥४५॥

Let (पृथिवी) the earth, (बिभ्रती) bearing (बहुधा) variously (जनं) the people (विवाचसं) of different languages and (नानाधर्माणं) of diverse customs, (यथा ओकसं) as belonging to one home, (दुहां) yield, (मे) me, (द्रविणस्य सहस्रं धाराः) a thousand streams of treasure (ध्रुवा धेनुः अनपस्फुरन्ती इव) like a steady unresisting milch-cow.

यस्ते॑ स॒र्पो वृश्चि॑कस्तृ॒ष्टद॑ंश्मा हेम॒न्तजं॑ब्धो भृम॒लो गुहा॒ शये॑। क्रिमि॒र्जिन्व॑त् पृथिवि॒ यद्य॒देज॑ति प्रा॒वृषि॒ तन्नः॒ सर्प॒न्मोप॑ सृप॒द्यच्छि॒वं तेन॑ नो मृड ॥४६॥

पदानि—यः। ते। सर्पः। वृश्चिकः। तृष्टऽदंश्मा। हेमन्तऽजब्धः। भूमलः। गुहा। शये। क्रिमिः। जिन्वत्। पृथिवि। यत्ऽयत्। एजति। प्रावृषि। तत्। नः। सर्पत्। मा। उप। सृपत्। यत्। शिवम्। तेन। नः। मृड ॥४६॥

अर्थ—हे (पृथिवि ते) हमारी मातृभूमि! तुम्हारे (यः सर्पः वृश्चिकः) जो सांप या बीछू (तृष्टदंश्मा) ऐसे जीव कीड़े आदि जिनके काटनेसे प्यास अधिक लगती हो. (हेमन्त-जब्धः) हिमविनाशक अर्थात् ज्वर के पैदा करनेवाले (भूमलः) या जिन के डसनेसे घुमरी पैदा हो (क्रिमिः) ऐसे कीड़े (गुहा शये) जो बिलों में पड़े सोया करते हैं, (प्रावृषि) बरसातके मौसिममें (यत् जिन्वत् यत् एजति) जो कांपते हुए चलते हैं या रेंगते हैं (तत् सर्पन्) जो रेंगा रहते हैं, वे सब (नः मा उपसृपत्) हमारे पास न आवें, (यत् शिवम्) जो हमारे लिए कल्याणकारी हो (तेन नः मृड) उससे हमें सुखी कर ॥४६॥

भावार्थ—हे मातृभूमि! तेरे बिलोंमें सांप, बीछू या ऐसे जीव जिनके काटनेसे दाह पैदा होती है, या जो शोष उत्पन्न करते हैं, वे भयंकर विषैले जीव कभी हमें स्पर्श भी न करें, जो पदार्थ हमारे लिये हितकारी और कल्याण करनेवाले हों, वे सदा हमारे पास आ हमें सुख देवें ॥४६॥

(ते सर्पः) Thy snake, (तृष्टदंश्मा वृश्चिकः) thy harsh-biting scorpion, (गुहा शये) lies in secret, (हेमन्तजब्धः) chilled with cold of winter, (भूमलः) bewildered, (क्रिमिः) the worm, O (पृथिवी) earth! (जिन्वत्) that becomes lively and (प्रावृषि यत् यत् एजति) stirs in early rainy season;

let (तत् सर्पत्) that creaping worm (नः मा उपसृपत्) not creap upon us, (यत् शिवं तेन नो मृड) be thou gracious to us with that which is propitious.

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

पदानि– ये। ते। पन्थानः। बहवः। जनऽअयनाः। रथस्य। वर्त्म। अनसः। च। यातवे। यैः। समूऽचरन्ति। उभये। भद्रऽपापाः। तम्। पन्थानम्। जयेम। अनमित्रम्। अतस्करम्। यत्। शिवम्। तेन। नः। मृड ॥४७॥

अर्थ-- हे भूमि! (ये ते बहवः पन्थानः जनायनाः) मनुष्यों के चलने, फिरने योग्य जो तुम्हारे बहुतसे मार्ग हैं, (रथस्य वर्त्म) रथके चलनेयोग्य, (अनसः यातवे) छकडोंके आने जाने लायक अथवा अन्नको ढो के ले जाने लायक जो मार्ग हैं, (यैः संचरन्ति भद्रपापाः) जिनसे परोपकारी भले लोग या जिन परसे दुष्ट स्वार्थरत लोग भी चलते हैं, (तं) उसे (अनमित्रं) शत्रुरहित (अतस्करं) ठग और चोरोंके भयसे रहित कर। (जयेम) हम जय प्राप्त करें, (यच्छिवं) जो कल्याणकारी है (तेन नो मृड) उससे हमें सुख दो ॥४७॥

भावार्थ-- हे हमारी मातृभूमि! तुम्हारा मार्ग जिसपर मनुष्य चलते फिरते हैं, रथ और छकडों के चलनेयोग्य है, जिसपर भले और बुरे दोनों

तरहके लोग चलते हैं, अन्न आदि पदार्थ जिसपर ढोये जाते हैं, वह मार्ग बिना शत्रु और चोररहित अर्थात् निर्भय और सुरक्षित कर। हम विजयी हों उस मार्गपर चलें। जो हमारे लिये भलाई हो, उससे हमें सुखी कर ॥४७॥

(ये ते बहवः पन्थानः) Thy many roads (जनायनाः) on which people travel, (रथस्य वर्त्म) a track for the chariot (च अनसः यातवे) and for the going of the cart, (यैः) by which (उभये) men of both kinds, (भद्र-पापाः) good and evil, (सं चरन्ति) move about, (तं पंथानं) that road, (अनमित्रं) free from enemies, and (अतस्करं) free from robbers, (जयेम) May we conquer; (यत् शिवं तेन नो मृड) be thou gracious to us with what is propitious.

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः। वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८॥

पदानि— मल्वम्। बिभ्रती। गुरुऽभृत्। भद्रऽपापस्य। निऽधनम्। तितिक्षुः। वराहेण। पृथिवी। सम्ऽविदाना। सूकराय। वि। जिहीते। मृगाय ॥४८॥

अर्थ— (गुरु-भृत्) श्रेष्ठ पदार्थको अपनी ओर खींचनेवाली और (मल्वं) तथा मलयुक्तको भी (बिभ्रती) धारण करनेवाली (भद्रपापस्य) धर्मात्मा और पापात्मा मनुष्यका (निधनं) मरण (तितिक्षुः) सहती हुई वह (पृथिवी) भूमि (वराहेण) उत्तम जल देनेवालेके साथ (संविदाना) अच्छी तरह पाकर अर्थात् अच्छी बरसातवाली होकर (सूकराय) अच्छी किरणवाले

(मृगाय) अपनी किरणोंसे अपवित्रताको पवित्र करनेवाले सूर्यके चारों ओर (विजिहीते) विशेष जाती है ॥४८॥

भावार्थ— गुरु पदार्थको अपनी ओर खीचने तथा धारण करनेकी शक्ति जिसमें है, भले और बुरे दोनोंको जो धारण किये है, दोनोंके मरणको जो सह लेती है। अच्छा जल बरसानेवाले मेघसे युक्त सूर्य जिसकी अपवित्रताको अपनी किरणोंसे हटा देता है, ऐसी हमारी मातृभूमि विशेष प्रकार से सूर्यके साथ साथ जाती है ॥४८॥

(बिभ्रती) Supporting both (मल्वं) fool and (गुरुभृत्) weighty, (तितिक्षुः) she bears (निधनं) the death of (भद्र-पापस्य) both-the good and evil. The (पृथिवी) earth (वराहेण संविदाना) in friendly concord with the Varaha-boar (विजिहीते) opens herself (सूकराय मृगाय) to the wild Sukara-hog.

ये त आरण्याः पशवों मृगा वनें हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति। उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अपं बाधयास्मत् ॥४९॥

पदानि— ये । ते । आरण्याः । पशवः । मृगाः । वनें । हिताः । सिंहाः । व्याघ्राः । पुरुषऽअदः । चरन्ति । उलम् । वृकम् । पृथिवि । दुच्छुनाम् । इतः । ऋक्षीकाम् । रक्षः । अपं । बाधय । अस्मत् ॥४९॥

अर्थ— (पृथिवि ये ते वने हिताः) हे हमारी मातृभूमि! जो तुम्हारे वनमें रखे गये हैं, (सिंहाः व्याघ्राःपुरुषादः) सिंह, बाघ और दूसरे प्राणियों की हिंसा करनेवाले मांसाहारी जीव (आरण्याः पशवः मृगाः) वनके रहनेवाले चतुष्पाद तृणभोजी मृगादिक (चरन्ति) चरते फिरते हैं, उनको और (उल वृकं दुच्छुनां) बीव, पागल कुत्ते, (ऋक्षीकां) भालू आदि(इतः अस्मात् अपबाधय) यहां हमसे दूर रखो ॥४९॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि! जो तुम्हारे हिंस्र जीव, शिकारी जानवर, चौपाये, भेडिये, पागल कुत्ते, भालू इत्यादि हैं, उन सबोंको हमसे दूर रखो ।

(ये ते आरण्याः पशवः) What forest animals of thine, (मृगाः वने हिताः) wild beasts set in the woods, (पुरुषादः) man-eating (सिंहाः) lions, and (व्याघ्राः) tigers, (उलं वृकं) the jackal, the wolf (चरन्ति) move about. (पृथिवि) O earth! (अप बाधय) do thou force away (ऋक्षीकां) misfortune and (रक्षः) evil spirit अस्मत्) from us (इतः) here.

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०॥

पदानि— ये । गन्धर्वाः । अप्सरसः । ये । च । अरायाः । किमीदिनः । पिशाचान् । सर्वा । रक्षांसि । तान् । अस्मत् । भूमे । यावय ॥५०॥

अर्थ— हे (भूमे ये गन्धर्वाः) मातृभूमि ! जो हिंसक, आततायी हमारे वध करने को उद्यत हैं, (अप् सरसः) कर्मपरा-

कुमुख आलसी हैं, (येअरायाः) जो निर्धन हैं (किमीदिनः) परधन के हरनेवाले हैं, (पिशाचान्) मांस खानेवाले हैं, (रक्षांसि) राक्षसी स्वभाववाले हैं, (सर्वान् अस्मत् यावय) सबों को हमसे दूर हटाओ ॥१०॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि ! जो हिंसक, आलसी, निर्धन, परधन हरनेवाले, मांसाहारी, अनात्मवादी, नास्तिक और आततायी हैं, उनको दूर करो ॥५०॥

(भूमे) O mother-land ! (तान् अस्मत् यावय) do thou keep away from us those, who are (गंधर्वाः) Gandharvas, (अप्सरसः) Apsarasas, (ये च अरायाः) those who are stingy and (किमीदिनः) always hungry, (पिशाचान्) those who drink blood, (सर्वा रक्षांसि) and all other evil spirits.

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि। यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् । वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

पदानि-- याम् । द्विऽपादः । पक्षिणः । सम्ऽपतन्ति । हंसाः । सुऽपर्णाः । शकुनाः । वयांसि । यस्याम् । वातः । मातरिश्वा । ईयते । रजांसि । कृण्वन् । च्यावयन् । च । वृक्षान् । वातस्य । प्रऽवाम् । उपऽवाम् । अनु । वाति । अर्चिः ॥५१॥

अर्थ— हमारी वह मातृभूमि है (यां द्विपादः हंसाः सुपर्णाः शकुनाः वयांसि पक्षिणः संपतन्ति) जहां दो पांववाले जीव, हंस, गरुड आदि पक्षी उडते हैं, (यस्यां मातरिश्वा वातः) आकाश में बढनेवाली या संचार करनेवाली हवा (रजांसि कृण्वन्) धूल उडाती हुई (वृक्षान् च्यावयन्) पेडों को जड से उखाडती हुई (ईयते) बहती है। (तस्य वातस्य प्रवां उपवां) उस वायु की गति को (अर्चिः) तेज या प्रकाश (अनुवाति) अनुसरण करता हुआ चलता है ॥५१॥

भावार्थ-- जिस भूमिमें सर्वदा आकाश में हंस आदि पखेरू आनन्द से उडते हैं, जहां धूलिको उडाते पेडों को उखाडते वायु बेरोकठोक सपाटेसे बहती है और जंगलकी अग्नि जहां जोरों में झझकती है, वह हमारी प्रिय मातृभूमि है ॥५१॥

(यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति) To whom twofooted birds such as (हंसाः) swans, (सुपर्णाः) eagles, (शकुनाः) hawks, (वयांसि) and other birds fly together, (यस्यां) on whom (वातः मातरिश्वा ईयते) the wind that dwells in the mid-region rushes about, (रजांसि कृण्वन्) raising the dust and (च्यावयन् च वृक्षान्) causing trees to tremble and on whom (अर्चिः) flame (अनुवाति) blows after (वातस्य प्रवां उपवां) the blast hither and thither.

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२॥

पदानि-- यस्याम् । कृष्णम् । अरुणम् । च । संहिते इति सम्ऽहिते । अहोरात्रे इति । विहिते इति विऽहिते । भूम्याम् । अधि । वर्षेण । भूमिः । पृथिवी । वृता । आऽवृता । सा । नः । दधातु । भद्रया । प्रिये । धामनिऽधामनि ॥५२॥

अर्थ--(यस्यां भूम्यां कृष्णं अरुणं च) जिस भूमि में तमोमय अंधकार और प्रकाशमय दिन (संहिते) इकट्ठे हो (अहोरात्रे) दिन और रात (अधि विहिते) होते हैं, (सा पृथिवी भूमिः) वह विस्तृत भूमि (वर्षेण वृता वृता) वृष्टि से ढकी हुई (भद्रया) कल्याण के साथ (प्रिये धामनि धामनि) हितकारी स्थानोंमें (नः) हमको (दधातु) धरे ॥५२॥

भावार्थ— जिस भूमिमें ठीक प्रमाण से रात और दिन होते हैं और उनकी सदा एकसी व्यवस्था रहती है, वह हमारी विस्तृत मातृभूमि हमें हितकर स्थानोंमें सुखसे रखे ॥५२॥

(यस्यां भूम्यां अधि) The land on whom (कृष्णंअरुणं च) the black and ruddy (अहोरात्रे) day and night (च संहिते विहिते) are settled and fixed; (सा पृथिवी भूमिः) may the broad earth which is (वृता आवृता) wrapped and covered with rain, (दधातु नः) keep us (भद्रया) happily (प्रिये धामनि धामनि) in each lovely abode.

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः॥५३

पदानि-- द्यौः । च । मे । इदम् । पृथिवी । च । अन्तरिक्षम् । च । मे । व्यचः । अग्निः । सूर्यः । आपः । मेधाम् । विश्वे । देवाः । च । सम् । दुदुः ॥५३॥

अर्थ-- (द्यौः) प्रकाशमय आकाश (पृथिवी) भूमि (अन्तरिक्षम्) और अन्तरिक्षलोक (अग्निः सूर्यः) अग्नि और सूर्य (विश्वे देवाः च) सब प्रकाश करनेवाले देव तथा विद्वान्, लोग, विजयी या व्यवहारचतुर (इदं) यह सब (मे) मुझ को (मेधां) धारणाशक्तिवाली बुद्धि (मे व्यचः) हमारी सब में व्याप्ति या आकलनशक्ति (संददुः) अच्छी तरह दें ॥५३॥

भावार्थ-- स्थावर वा जंगम, चेतन वा अचेतन सब पदार्थोंकी सहायतासे हमारी बुद्धि बढे और कीर्तिरूपसे चारों ओर व्यापक हो ॥५३॥

(द्यौः च पृथिवी च) Heaven, earth (अन्तरिक्षं च) and atmosphere have given (मे मे इदं व्यचः) me this ample place (अग्निः) fire, (सूर्यः) the Sun, (आपः) waters, (विश्वे देवाः) all the other deities (मेधां सं ददुः) have jointly given me mental power.

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४

पदानि-- अहम् । अस्मि । सहमानः । उत्तरः । नाम । भूम्याम् । अभीषाट् । अस्मि । विश्वाषाट् । आशाम्ऽआशाम् । विऽससहिः ॥५४॥

अर्थ-- (अहं सहमानः) गरमी, सरदी, सुख, दुःख सह लेनेवाले (नाम) यश और प्रतिष्ठासे (उत्तरः) उत्कृष्टतर (भूम्यां

अस्मि) भूमि में (आशां आशाम्) हर एक दिशाओंमें। (विषासहिः) विशेष विजयी (अभीषाड्) सब ओर पराक्रम करनेवाला (विश्वाषाड्) सब शत्रुओं का नाश करनेवाला (अस्मि) हूं ॥५४॥

भावार्थ— मैं अपनी मातृभूमिके लिये तथा उसके दुःख निवारण करनेके लिये हर तरहके कष्ट सहन करने को तैयार हूं। और प्रयत्न से सब शत्रुओं को परास्त करूंगा। एक भी शत्रु को रहने नहीं दूंगा ॥५४॥

(अहं अस्मि) I am (सहमानः) victorious, I am (नाम) by name (उत्तरः) Superior (भूम्यां) on this earth. (अभीषाड् अस्मि) I am triumphant, (विश्व षाट्) all-overpowering, (विषासहिः) conqueror (आशां आशां) on every side.

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् । आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥

पदानि— अदः । यत् । देवि । प्रथमाना । पुरस्तात् । देवैः । उक्ता । विऽअसर्पः । महिऽत्वम् । आ । त्वा । सुऽभूतम् । अविशत् । तदानीम् । अकल्पयथाः । प्रऽदिशः । चतस्रः ५५

अर्थ- हे (देवि) दिव्य मातृभूमि ! तुम (यत्) जब (पुरस्तात्) पहिले (देवैः) देवों और विद्वान् विजिगीषु या व्यवहारकुशल लोगोंद्वारा (प्रथमाना) प्रख्यात होकर (उक्ता) प्रशंसित हो गई, तब (व्यसर्पः) विशेष उत्कर्षको पहुंची (तदानीम्) तब इसको (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओंमें (सुभूतम् महित्वम्) बडी प्रतिष्ठा (अकल्पयथाः) प्राप्त हो गई, हे भूमि ! वह तुम्हारी प्रतिष्ठा (त्वा) तुममें (आविशत्) प्रविष्ट हो ॥५५॥

भावार्थ— हे मातृभूमि ! पहलेके लोग जब तुम्हारी स्तुति करते थे, उस समय तुम्हारा महत्त्व और कीर्ति चारों दिशाओंमें फैल जाती थी, वही तुम्हारा महत्त्व अब भी वैसाही फैले ॥५५॥

(देवि) O divine one ! (देवैः उक्ता) It was told by the deities that (अदः यत्) when (प्रथमाना पुरस्तात्) spreading thyself forward, (व्यसर्पः महित्वं) thou didst expand to greatness. (तदानिं त्वा सुभूतं आ विशत्) Then well-being entered into thee and (चतस्रः प्रदिशः कल्पयथाः) then you made the four directions fit to live in.

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

पदानि— ये । ग्रामाः । यत् । अरण्यम् । याः । सभाः । अधि । भूम्याम् । ये । सम्ऽग्रामाः । सम्ऽइतयः । तेषु । चारु । वदेम । ते ॥५६॥

अर्थ— (ये ग्रामाः) जो गांव या नगर (यत् अरण्यं) जो वन (याः सभाः) जो राजसभा, न्यायसभा धर्मसभा आदि (ये संग्रामाः) जो युद्ध (याः च समितयः) जो बडी बडी परिषदें (अधि भूम्याम्) हमारी भूमिमें (सन्ति) हैं. (तेषु) उन सबों को (ते) तुम्हारे बारेमें (चारु वदेम) अच्छा कहेंगे ॥५६॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि ! तुम्हारे में जहां जहां नगर, वन, सभा, परिषद्, संग्राम किंवा मनुष्य एकत्र हों, वहाँ वहाँ हम तुम्हारी प्रशंसा करें । अर्थात् कभी तुम्हारे अहित की बात न कहें ॥५६॥

(ये ग्रामाः) What villages, (यत् अरण्यं) what forest; (याः सभाः) what assemblies, (ये संग्रामाः) what battles, (समितयः) what gatherings are (अधि भूम्यां) upon this earth, (तेषु चारु वदेम ते) in them may we speak glorious words about thee.

अश्वं इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत । मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

पदानि— अश्वःऽइव । रजः । दुधुवे । वि । तान् । जनान् । ये । आऽअक्षियन् । पृथिवीम् । यात् । अजायत । मन्द्रा । अग्रऽइत्वरी । भुवनस्य । गोपाः । वनस्पतीनाम् । गृभिः । ओषधीनाम् ॥५७॥

अर्थ— (यात्) जब (पृथिवीम्) भूमिमें कोई युद्ध आदिसे (आक्षियन्) आकर बसे या बसाया जाय, तब (तान् जनान्) उन रहनेवाले मनुष्यों को (यः रजः) जो सेना के आने से उठी धूलि (अश्वः इव वि, दुधुवे) घोडों के चलने के समान उडी वह (मन्द्रा) प्रसन्न करनेवाली (अग्रेत्वरी) अग्रभागमें जल्द जानेवाली (भुवनस्य गोपा) संसारकी रक्षा करनेवाली (वनस्पतीनां ओषधीनां च गृभिः) वनस्पति और औषधियों का ग्रहण करनेवाली होवे ॥५७॥

भावार्थ-युद्धमें विजयी हो, जहांपर सेनाके घोडोंके चलने से धूलि उडकर मनुष्योंके चित्तों को प्रसन्न करती है। अथवा जब किसी विशेष कारणके लिये मनुष्य अपना संघ कर एकत्रित होते हैं, तब उस संघ से जो फलस्वरूप में एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है, वह शक्ति सबको आनन्द देनेवाली, सब देश का संरक्षण करनेवाली और औषध आदि भक्ष्य पदार्थ देनेवाली होती है। इसलिये उसे मातृभूमि के संपूर्ण भक्त सदैव आदरसे ध्यान में रक्खें ॥५७॥

(अश्व इव) As the horse (रजः वि दुधुवे) scattereth the dust, she scattered (जनान्) the people (ये पृथिवीं आक्षियन्) who dwelt upon the land; (यात् अजायत) when they were born, the land is (भुवनस्य अग्रे-वरी) leader and head of the world, (मन्द्रा) delightful, (वनस्पतीनां गोपा) protector of the trees, (ओषधीनां गृभिः) up-holder of the plants.

यद् वदा॑मि मधु॑मत् तद् व॑दामि यदीक्षे॑ तद् व॑नन्ति मा। त्विषी॑मानस्मि जू॒तिमान॒वान्यान् ह॑न्मि दोध॑तः ॥५८॥

पदानि– यत्। वदा॑मि। मधु॑ऽमत्। तत्। वदामि। यत्। ईक्षे॑। तत्। वनन्ति। मा। त्विषि॑ऽमान्। अस्मि। जूतिऽमान्। अव॑। अन्यान्। हन्मि। दोध॑तः ॥५८॥

अर्थ--(यत्) हम अपने राष्ट्र या देशके संबंध में जो (वदामि) कहते हैं, (तत् मधुमत् वदामि) वह हितकर और मधुर शब्दोंमें कहते हैं, (यत् ईक्षे) जो देखते हैं (तत्) वह सब (मा) हमको

सहायक हो। (अहं त्विषीमान्) हम प्रकाशमान्, तेजस्वी, दीप्तिमान् और (जूतिमान्) ज्ञानवान् हों. इससे (अन्यान्) दूसरे जो हमारी भूमिको दुह लेते हैं (अवहन्मि) उनका नाश करते हैं॥५८॥

भावार्थ-- हम जो कुछ भी भाषण करेंगे, वह सब हमारी मातृभूमि के लिये हितकारी होगा; जो कुछ हम आंखों से देखेंगे, वह सब भी मातृभूमि ही के लिये सहायक होगा; इसी प्रकार हमारे सब काम मातृभूमि ही के अर्पण होंगे। हम तेजस्वी और बुद्धिमान् हों, जो हमारे शत्रु हमारी मातृभूमिका दोहन करेंगे, उन का हम नाश करेंगे ॥५८॥

(यत् वदामि) What I speak (तत् मधुमत् वदामि) I speak sweet as honey. (यत् ईक्षे) What I view (तत् मा वनन्ति) thereby they are attracted to me. (त्विषीमान् अस्मि) I am brilliant, (जूतिमान्) I am swift, (दोधत अन्यान् अवहन्मि) I slay others who are violent.

शान्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९॥

पदानि— शान्तिऽवा । सुरभिः । स्योना । कीलालऽऊध्नी । पयस्वती । भूमिः । अधि ब्रवीतु । मे । पृथिवी । पयसा। सह ॥५९॥

अर्थ—(शन्तिवा) शान्तिकारक (सुरभिः)सुगन्धियुक्त (स्योना) सुख देनेवाली (कीलालोध्नी) अन्न की देनेवाली (पयस्वती) जहां बहुत जल हो, ऐसी (मे पृथिवी भूमिः पयसा सह) हमारी भूमि भोग्य पदार्थ जो दूधके साथ हों, उससे हमें (अधि ब्रवीतु) कहे ॥५९॥

वे०प०१०

भावार्थ— शान्ति, सुख, अन्न, पानी आदि की देनेवाली हमारी मातृ-भूमि हमें सब भोग के पदार्थ और ऐश्वर्य देनेवाली हो, और इस तरह हमारी रक्षा करती रहे ॥५९॥

(शन्तिवा) Peaceful, (सुरभिः) fragrant, (स्योना) pleasant, (कीलालोध्नी) with nector in her udder, (पयस्वती) rich in milk, (भूमिः मे अधि ब्रवीतु) let the land bless me, (पृथिवी पयसा सह) the land who is always in abundance of milk.

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्। भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥

पदानि— याम्। अनुऽऐच्छत्। हविषा। विश्वऽकर्मा। अन्तः। अर्णवे। रजसि। प्रऽविष्टाम्। भुजिष्यम्। पात्रम्। निऽहितम्। गुहा। यत्। आविः। भोगे। अभवत्। मातृमत्ऽभ्यः ॥६०॥

अर्थ— (यत्) जब (विश्वकर्मा) सब काम करनेवाले (रजसि अर्णवे) अन्तरिक्षमें (अन्तः प्रविष्टां याम्) भीतर प्रविष्ट जिस भूमिको (हविषा) अन्नादि पदार्थोंसे (अन्वैच्छत्) सेवा करनेकी इच्छा करता है, तब गुहा निहितं गुप्त स्थानमें रक्खा हुआ (भुजिष्यं पात्रम्) भोजनके योग्य अन्न आदि (मातृमद्भ्यः) मातृ-भक्तोंके (भोगे) उपभोग के लिये (आविः अभवत्) प्रकट होता है ॥६०॥

भावार्थ— जहां सब तरह के उद्योग करनेवाले कुशल पुरुष मातृभूमि की सेवा करने के लिये कटिबद्ध होते हैं, वहां मातृभूमिका गुप्त स्थानमें रक्खा हुआ तथा परसा हुआ थाल (जो केवल भक्तोंही के लिये है) आकर उनके सामने प्रकट होता है। अर्थात् उनके उपभोग के सारे पदार्थ उन्हें सहजही मिल सकते हैं ॥६०॥

(विश्वकर्मा) The maker of the universe (हविषा अन्वैच्छत्) desired with oblation, (अर्णवे अन्तः रजसि प्रविष्टां) when she was set in the mid-airs billowy ocean. (भुजिष्यं पात्रं) An enjoyable vessel (गुहा निहितं) placed in secret place, (भोगे आविः अभवत्) become manifest in the enjoyment (मातृमद्भ्यः) for those who are with good mothers.

त्वम॑स्याव॒पनी॒ जना॑ना॒मदि॑तिः का॒म॒दुघा॑ पप्रथा॒ना। यत् त॑ ऊ॒नं तत् त॒ आ पूरयाति प्र॒जाप॑तिः प्रथम॒जा ऋ॒तस्य॑ ॥६१॥

पदानि— त्वम् । असि । आऽवपनी । जनानाम् । अदितिः । कामऽदुघा । पप्रथाना । यत् । ते । ऊनम् । तत् । ते । आ । पूरयाति । प्रजाऽपतिः । प्रथमऽजाः । ऋतस्य ॥६१

अर्थ— हे मातृभूमि! (त्वं जनानां अदितिः) तुम लोगोंको दुःख न देनेवाली (कामदुघा) इच्छित पदार्थोंकी देनेवाली (पप्रथाना) स्तुतिके योग्य (आवपनी) जिसमें अच्छी तरह बोनसे बहुत अन्न उपजता है, (असि) ऐसी तुम हो। (यत् ते ऊनम्) जो तुम्हारेमें कमी है, (तत् ते ऋतस्य) सो तुम्हारे सत्य यज्ञका कर्ता

*

(प्रथमजाः) सृष्टिके आदिमें प्रकट हुआ (प्रजापतिः) परमेश्वर (आपूरयाति) पूर्ण कर देते हैं ॥६१॥

भावार्थ-- हे हमारी मातृभूमि ! तू हम सबों को सुख देनेवाली है, इच्छित पदार्थों की देनेवाली है, इसलिये जो तेरे में कमी हो, उसे परमेश्वर पूरा करे ॥६१॥

(त्वं जनानां आवपनी असि) Thou art holder of people, (अदितिः) unbroken, (कामदुघा) wishfulfilling, (प प्रथाना) far-spreading, (यत् ते) whatever of thee is (ऊनं) deficient, (प्रजापतिः) may the protector of people, (प्रथमजा ऋतस्य) first born of Righteousness, (तत् ते आपूरयाति) fill that up for thee.

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः । दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्य-माना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२॥

पदानि— उपऽस्थाः । ते । अनमीवाः । अयक्ष्माः । अस्मभ्यम् । सन्तु । पृथिवि । प्रऽसूताः । दीर्घम् । नः । आयुः । प्रतिऽबुध्यमानाः । वयम् । तुभ्यम् । बलिऽहृतः । स्याम ॥६२

अर्थ— हे (पृथिवि ते प्रसूताः) भूमि ! तुम्हारेमें उत्पन्न सब लोग (अनमीवाः) रोगरहित (अयक्ष्माः) क्षयरोगरहित (अस्मभ्यं उपस्थाः) हमारे पास रहनेवाले (सन्तु) हों। (नः आयुः दीर्घं भवतु) हमारी उमर बडी हो, हम बहुत दिन जीवें. (वयं प्रतिबुध्य-मानाः) हम ज्ञानविज्ञानयुक्त हों । (तुभ्यं बलिहृतः स्याम) तुम्हें बलि, कर आदि देनेवाले हों ॥६२॥

भावार्थ— हे हमारी मातृभूमि ! जो हम लोक तुम्हारेमें उत्पन्न हुये हैं, वे नीरोग, दृढाङ्ग, दीर्घायु, बुद्धिमान्, जागृतिसंपन्न रहें और मातृभूमिके हितके लिये अपने निजके स्वार्थ का बलि देने में उद्यत रहें, सब भांति तुम्हारा हित करनेमें तत्पर रहें ॥६२॥

(पृथिवि) O mother-land! (ते उपस्थाः) let thy products (अनमीवाः) be free from disease and (अयक्ष्माः) free from consumption; (प्रसूताः सन्तु) be produced (अस्मभ्यं) for our advantage (दीर्घं नः आयुः) through our long life (प्रतिबुध्य-माना) wakeful and watching, (वयं) may we (स्याम) be (बलिहृतः) bearers of tribute (तुभ्यं) to you.

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्॥६३॥

पदानि— भूमे । मातः । नि । धेहि । मा । भद्रया । सुऽप्रतिस्थितम् । सम्ऽविदाना । दिवा । कवे । श्रियाम् । मा । धेहि । भूत्याम् ॥६३॥

अर्थ— हे (मातर् भूमे) मातृभूमि ! (भद्रया) कल्याणको बढानेवाली बुद्धिसे हमें (सुप्रतिष्ठितम्) सुस्थिर या युक्त (मा) मुझको (निधेहि) रक्खो (दिवा), प्रतिदिन (संविदाना) सब बातकी जाननेवाली करो। (कवे मां) हे क्रान्तदर्शनी ! हमें (भूम्यां श्रियं धेहि) पृथिवीमें संपत्ति प्राप्त हो ॥६३॥

भावार्थ— हे मातृभूमि ! मुझे बुद्धिवान् कर और तेरे विषयमें प्रति दिन चिन्ता करनेवाले सूक्ष्मविचारी और दूरदर्शी मनुष्यों को तथा मुझे अपनी भूमिगत सम्पत्ति प्राप्त कर देनेवाली हो ॥६३॥

O (भूमे मातः) mother-land! (धेहि मा) keep me (भद्रया) happily (सुप्रतिष्ठितं) well-established. (कवे) O sage! (दिवा संविदाना) in concord with heaven (मा धेहि भूत्यां) keep me in glory and prosperity.

॥ मातृभूमिका सूक्त समाप्त ॥१॥

मातृभूमिका वैदिक गीत।

जिस देश में जो लोग रहते हैं, वह उनकी मातृभूमि कहलाती है। जैसे भारतीयोंकी भरतभूमि, चीनी लोगों की चीनभूमि, अंग्रेजोंकी इंग्लैंड भूमि और इसी तरह दूसरे दूसरे लोगोंकी अलग अलग मातृभूमि है। जिस तरह माता के रक्तमांस आदि से बच्चे का देह बनता है, उसी तरह मातृभूमि में उत्पन्न होनेवाले अनाज, पानी, वहांकी हवा और वनस्पतियों से उस देश के मनुष्योंके देह बनते हैं। इसलिये उस देशको अपनी मातृभूमि समझना उस देश के निवासियों का स्वभाव होता है।

परमेश्वर का नियमही है कि माता के दूधपर बच्चेकाही अधिकार रहना चाहिये। क्योंकि माताके स्तनों में जो दूध परमेश्वर अपने अटल नियमोंसे उत्पन्न करता है, वह उस मातासे उत्पन्न होनेवाले बच्चे के लिये ही रहता है। बच्चे का पालन उसकी माता के दूध से ही होना चाहिये। माता का दूध पीना बच्चेका जन्मसिद्ध अधिकार है और वह उसका धर्म भी है। यदि कोई जबरदस्त बालक अपनी माताका दूध पीकर दूसरे बालक की माता का भी दूध जबरदस्ती से पियेगा और दूसरे बच्चे को भूखा रखेगा, तो उसका वह कार्य परमेश्वर के नियमों के विरुद्ध होगा और वह जबरदस्त बच्चा ईश्वर के नियमों के अनुसार अपराधी समझा जावेगा। इसी तरह एक देशके मातृभूमि के बालक दूसरे देशके मातृभूमि के बालकोंको

परतंत्र बनावें और उस देश में उत्पन्न होनेवाले उपभोगके पदार्थ उस देश के निवासियों को न देकर अपनेही सुखके लिये उपयोग करें, तो वह उनका बहुत बडा अपराध होगा। किसीको भी भूलना न चाहिये कि जो स्थिति माता और बच्चेकी है. वही मातृभूमि और उसके बच्चोंकी है।

प्रत्येक मनुष्य जानता है कि, जिस घरमें वह रहता है उस घरपर उसका कितना प्रेम रहता है। रात्रिके समय कोई चोर आता है और उस घरमें से कोई वस्तु अपने भोगके लिये ले जाता है। न्यायी सरकार ऐसे चोरको पकडकर सजा देती है, क्योंकि न्यायका मुख्य हेतु यह है कि किसीके भी घरकी उसके पूर्वजोंसे चली आई वस्तुपर उसीका अधिकार होना चाहिए। चोरका उसपर अधिकार नहीं है, इसलिये वह सजा पानेके योग्य होता है। जिस तरह एक छोटासा घर किसी एक कुटुंबका रहता है, उसी तरह देश यह एक बडा घर है; और वह घर सब देश-वासियोंका है। यदि उस राष्ट्रस्वरूप घरपर दूसरे देशोंके बलवान् लोग मिलकर हमला करें और वहांकी वस्तुओंपर अपना अधिकार बतावें, तो वास्तवमें वह अपराध एक घर पर हमला करनेवाले डाकूके समान है। उसीके समान किन्तु उससे कुछ उग्र स्वरूपका यह अपराध है। यह सिद्ध करनेकी ज्यादा जरूरत नहीं है। इस संसारके बडे बडे तत्त्वज्ञानी लोग यही कहते हैं। लेकिन संसारका राज्यकारभार तत्त्वज्ञानियोंके हाथमें न होनेसे बलवान् लोक इस तरहके राष्ट्रीय लूटमारको अपराध नहीं समझते और इस बडे अपराधीको इसी कारण सजा नहीं होती। परंतु ईश्वरके नियमोंमें इस तरहका पक्षपात नहीं हो सकता।

हमें यह देखना नहीं है कि अपराधीको दण्ड मिलना आवश्यक है या नहीं है। हमें सिर्फ यही दिखलाना है कि माताके दूधपर उसके बच्चेका, घरपर उस घरके मालिक का, राष्ट्रपर उस राष्ट्रके लोगोंका और मातृभूमिके उपयोगी वस्तुओंपर उस मातृभूमिके बच्चोंका अधिकार है।

बच्चा अपनी माताका दूध पीता है, इसलिये उसका अपनी मातापर बहुत प्रेम रहता है। मनुष्य अपनी मातृभूमिमें पैदा होनेवाले अनाज, फल, कंद, मूल इत्यादि खाते हैं और पुष्ट बनते हैं। इसलिये उनका अपनी मातृभूमि पर प्रेम रहता है। इसलिये कवि जिस तरह मातृभूमिके गाने बनाते हैं, उसी तरह लोग माता के गाने गाते हैं और दूसरों को उत्साहित करते हैं।

पाठकों को यह बात पुनः पुनः बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि माता और मातृभूमि के विषयमें लिखे हुए काव्य नैसर्गिक प्रेम उपजाते हैं। काव्यके भिन्नभिन्न रसों में प्रेमरस श्रेष्ठ है। मातृदेवताके काव्य में जैसा प्रेमरस भरता है, वैसा अन्य किसी काव्यमें हो नहीं सकता। माता क्या है? असीम प्रेम की मूर्ति है। उसके प्रेमको अन्य किसी बात की उपमा ही नहीं है। उसका प्रेम वास्तवमें अनुपम है। यदि माताके प्रेमको कोई उपमा देनी ही हो, तो वह मातृ-प्रेमकी ही हो सकती है दूसरी नहीं।

वह मनुष्य विरला ही होता है, जिसे माताके प्रति आदर न हो। माताके प्रेम से ही प्रत्येक मनुष्य का पालन होता है। मातृभूमि पर भी मनुष्यका प्रेम होता है। यह देशप्रेम भी असीम होता है। कैसी भी आपत्ति, कैसा भी संकट क्यों न हो, मनुष्य मातृभूमिका त्याग करने को तैयार नहीं होता। माता के वा मातृभूमि के यश के कारण शरीर निछावर करने तक को मनुष्य तैयार रहता है। यही असीम प्रेम है, जिससे सब देशके लोगोंने अपनी जन्मभूमि के गीत भक्तिभर प्रयत्न करके उत्तम उत्तम बनाए हैं। मातृ-भूमि के लिये लोगोंने काव्य बनाये हैं। सभी देशोंमें यह प्रथा है कि आनंदोत्सवमें, विजयोत्सवमें, देशवासी अपने अपने राष्ट्रगीत का गान करते हैं।

इस प्रकार का कोई राष्ट्रगीत या मातृभूमिगीत भारतवासियों में है या नहीं, इस के विषय में कई विद्वानोंके भिन्नभिन्न मत हैं। कई विद्वान यह

बतलाते हैं कि भारतवासियों का एक राष्ट्र कभी भी नहीं था, इसलिये उनमें राष्ट्रगीत होना असंभव है। मध्यकालमें अपने विस्तृत देशके बहुत से छोटे छोटे राज्य बन गये थे। इसलिये यदि कहा जाय कि उस कालमें एकराष्ट्रीयत्व की कल्पना न थी, तो वह सच हो सकता है। परन्तु हम में प्रारंभसे राष्ट्रीयता की कल्पना है, वह ऋषियों के कालसे चली आयी है और इसका निदर्शक राष्ट्रगीत भी हमारे पास है। इसीका समर्थन करने के लिये इस लेखमें मातृभूमिके वैदिक सूक्त का विचार किया है। यह सूक्त अथर्ववेदके १२ वे कांडका पहला सूक्त है।

सूक्तका उपयोग।

जिस सुक्तके विषयमें हम यहां लिख रहे हैं, उसका महत्त्व राष्ट्रीय है या नहीं यह हम उसके उपयोगसे जान सकते हैं। इसलिये इसका उपयोग कहां किया जाता है देखो—

१. ग्रामपत्तनादिरक्षणार्थम्० (सायनभाष्य) [अथर्ववेद १२।१।१]

"ग्राम, पत्तन, नगर आदि की रक्षा के समय इसका उपयोग करना चाहिये।" अर्थात् ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र, स्वदेश आदिकी रक्षाके समय इसका उपयोग करना चाहिये। स्वदेश की रक्षाके लिये जब कोई काम करना हो, तब यह सुक्त कहना चाहिये। इस परसे यह सिद्ध है कि स्वराष्ट्ररक्षासे इस सूक्त का निकट संबंध है। सब लोग जानते हैं कि राष्ट्रगीत का यही उपयोग हैं। सब देशोंमें राष्ट्रगीतका उपयोग इसी काम के लिये किया जाता है। परन्तु इसका विशेष विचार करना चाहिये, इसलिये नीचे और प्रमाण दिये हैं।

२. पार्थिवीं भूमिकामस्य। (नक्षत्रकल्प १७)

"पृथ्वीकी इच्छा करनेवाला पार्थिवी महाशांति करनेके समय इसका उपयोग करे।" देशमें या राष्ट्रमें जब अशांति उत्पन्न होती है, तब उस

अवस्थाको दूर करनेके लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसे 'पार्थिवी महाशांति' यह वैदिक नाम है। इसमें कई महत्त्वपूर्ण बातें करनी पडती हैं। ऐसे समय यह सूक्त कहना चाहिये। यह नक्षत्र-कल्पकर्ताका कहना है। "भूमिकामः" अर्थात् भूमिकी इच्छा करनेवाला या अपनी मातृभूमि में शांतता करनेकी इच्छा करनेवाला जो मनुष्य है, उसने वह काम करते समय यह सूक्त कहना चाहिये। इस सूक्तके कहने से मातृभूमिके हितका काम करने के लिये उत्साह मिलता है। इसी प्रकार-

२. भौमस्य हृतिकर्मणि। (कौशीतकी सूत्र० ५।२)

(भौम) प्रदेशके वा राष्ट्रके (हृतिकर्म) आदरके लिये जो काम करना है, उस काममें इस सूक्त का उपयोग करना चाहिये।' 'हृति' का अर्थ 'आदर'। 'हृतिकर्म' का अर्थ है आदर के लिये किया हुआ काम। राष्ट्रीय महोत्सव विजयोत्सव के समय इस सूक्त का उपयोग करना चाहिये।

सायणाचार्यजीने अपने भाष्य में यह भी बतलाया है कि, इस सूक्त का उपयोग कौनकौन कर सकते हैं। हम अब उसीको देखेंगे -

१. पुष्टिकामः।
२. व्रीहियवान्नकामः।
३. मणिहिरण्यकामः। (सायणभाष्य अथर्व० १२।१)

"पुष्टिकी इच्छा करनेवाले को, अन्नकी इच्छा करनेवाले को, रत्न-सुवर्ण आदि की इच्छा करनेवाले को इस सूक्तका पाठ करना चाहिए।" तात्पर्य यह है कि इस सूक्तका गायन उस समय करना चाहिये, जब हम राष्ट्रीय उन्नतिके काम करते हों। यदि वाचक विचारें कि राष्ट्रगीत ऐसे ही अवसर पर गाये जाते हैं, तो वे सूत्रकार एवं भाष्यकार के कथन का रहस्य समझ सकते हैं।

इस सूक्त का विचार करते समय हमें देखना चाहिये कि, यह सूक्त किस गण में है। पूर्व के ऋषियोंने अथर्ववेद के कुछ गण बना दिये हैं।

उनमेंसे "वास्तोष्पति" नाम का जो गण है, उसमें यह सूक्त है। 'वस्तु' पर पतित्वका वा मलकियतका हक बतलाने या सिद्ध करनेवाले सूक्त 'वास्तोष्पति' गणमें हैं। ऊपर बतलाया गया है कि पूर्वोक्त सूक्त उस समय कहने का है, जब किसी देशके निवासी मातृभूमिपर अपना हक बतलाते हों। इसलिये यह सूक्त 'वास्तोष्पति' गणमें शामिल कियां गया है।

यदि हम उक्त बातों पर ध्यान दें, तो हमें उक्त सूक्तकी महत्ता दिखाई देगी और विशेष रूप से विदित होगा कि मातृभूमि का यह वैदिक गीत विशेष प्रकारका राष्ट्रगीत ही है, तथा वह राष्ट्रीय अवसर पर ही गाना चाहिये।

मातृभूमि की कल्पना।

इन बाहरी प्रमाणोंका विचार करके ही अबतक हमने मातृभूमिके सूक्तका स्वरूप देखा। अब भीतरी प्रमाणोंका विचार करेंगे और देखेंगे कि इसके विचार कहांतक राष्ट्रीय महत्त्वके हैं। अब पहले यह देखेंगे कि इस सूक्तमें जो मातृभूमि की कल्पना है, वह किस प्रकार की है। जो लोग समझते हैं कि हम लोगोंमें 'मातृभूमि' की कल्पना तक नहीं है, वे इन वचनोंका विचार अच्छी तरह करें और प्रत्यक्ष देख लें कि हमारे अति प्राचीन साहित्यमें मातृभूमि के विचार विद्यमान हैं, तब यह भी सिद्ध होगा कि मातृभूमि की कल्पना सर्वप्रथम ऋषियों की है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। (अथर्व० १२।१।१२)

"मेरी माता भूमि है और मैं मातृभूमिका पुत्र हूं।" हमारीदेशभूमि ही हमारी माता है और हम सब उस मातृभूमिके पुत्र हैं। अर्थात् हम सब देशवासी एकही माताके पुत्र हैं, अतएव हम सब सच्चे देशबंधु हैं। स्पष्ट ही है कि प्रत्येक देशके निवासी को यही भाव मनमें लाना चाहिये। मातृभूमिके भक्तोंके गौरवके विषयमें ऋग्वेदका यह मन्त्र पढने योग्य है—

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥ (ऋग्वेद ५।५९।६)

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥
(ऋग्वेद ५।६०।५)

'संपूर्ण (पृश्नि-मातरः) मातृभूमि को माता माननेवाले सब (मर्त्याः) मनुष्य सच्चे कुलीन हैं। उनमें न कोई (ज्येष्ठ) श्रेष्ठ है, न कोई कनिष्ठ है और न कोई मध्यम है। उन सबोंका दर्जा समान है। वे सब (उत्-भिदः) अपने ऊपरके दबावको भेद कर ऊपर उठनेवाले हैं। सबका विचार एकसा है, अर्थात् वे (भ्रातरः) बन्धु ही हैं। वे अपने (सौभगाय) धनके बढाने के लिये (सं-वावृधुः) सब मिलकर प्रयत्न करते हैं।'

इस मन्त्रमें 'पृश्नि-मातरः' अर्थात् भूमिको माता माननेवाले सत्पुरुषोंका वर्णन देखनेयोग्य है। मातृभूमिके भक्त एकही विचारवाले रहते हैं। उन में उच्चनीचभाव नहीं रहता। उन सब लोगोंका दर्जा एकसा रहता है और वे सब मिलकर एक विचारसे मातृभूमिके उद्धारार्थ कार्य करते हैं। वे आपसमें बंधुप्रेम रखते हैं और अपनी उन्नति कर लेते हैं। मातृभूमि को अपनी सबकी माता माननेसे आचरणमें जो फरक पडता है, वह इस मंत्र में स्पष्ट रीति से बताया गया है। अपने व्यवहार का केन्द्र मातृभूमि है, यह माननेवाले और न माननेवाले लोगोंके व्यवहारमें यह भेद होता है। वेदोंमें यह बात इतने साफ तौरसे बतलाई है, इसका कारण यह है कि वैदिक धर्मियोंको यह बतलाना है कि इसका विचार करके उन लोगोंमें मातृभूमि की भक्ति बढे और अपनी उन्नति कर लें। उसी तरह—

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ (ऋग्वेद १।१३।९)

'(मही) मातृभूमि, (सरस्वती) मातृसंस्कृति और (इळा) मातृभाषा ये तीन सुख देनेवाली देवताएं हैं। वे सर्वकाल अन्तःकरणमें रहें।'

इस मन्त्र की तीन देवताओंमें मातृभूमि को स्थान दिया है। तीन देवताओंका सम्बन्ध स्पष्ट करके बतलाने की यहां आवश्यकता नहीं है।

क्योंकि वह इतना स्पष्ट है कि वह एकदम मालूम हो जायगा । इन सब मन्त्रोंका विचार करनेसे मालूम होगा कि हमारे धर्मग्रंथोंमें मातृभूमिका महत्व और श्रेष्ठत्व कितना वर्णन किया हुआ है, इसीके बारेमें और बातें देखनेके पहिले यह मंत्र देखिये—

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ॥
(अथर्ववेद १२।१।६३)

'हे (मातः भूमे) मातृभूमि ! मुझे कल्याण अवस्था से युक्त कर' अर्थात् मेरा सब प्रकारसे कल्याण कर । इसमें 'भूमे मातः' आदि पदोंसे मातृभूमि की योग्यता जान सकते हैं । इसी तरह—

सा नो भूमिः पूर्वपेयं दधातु ॥३॥
सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहाम् ॥९॥
सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ॥ १३॥
सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ॥४०॥
सा नो भूमिः प्रणुदातां सपत्नानसपत्नं मा
पृथिवी कृणोतु ॥४१॥ (अथर्ववेद १२।१)

'वह हमारी मातृभूमि हमें अपूर्व पेय पदार्थ देवे । वह हमारी भूमि हमें गायें और अन्न देवे । वह हमारी भूमि हमें बहुत दूध देवे । वह हमारी भूमि हमारा संवर्धन करे । वह हमारी भूमि हमारी इच्छानुसार धन देवे । वह हमारी भूमि हमारे शत्रुओंको दूर करे और मुझे शत्रुरहित बनावे ।'

पिछले सम्बन्धका ध्यान रखनेसे विदित होगा कि इन सब मन्त्रोंमें 'भूमि' शब्द 'मातृभूमि' के अर्थ में आया है। मातृभूमि, हमारे लिये यह करे, वह करे ।' आदि रचना काव्यमय अलंकार है । इसका अर्थ वास्तवमें यह है कि 'मातृभूमि की कृपा से हमारे हाथसे यह कार्य होवे या यह कार्य होकर वह फल मिले ।' क्योंकि प्रत्येक काव्यमें इस तरहकी आलंकारिक

याचना रहती है। उन सब प्रार्थनाओं का शाब्दिक अर्थ भिन्न रहता है और अन्दरका भाव भिन्न रहता है। इस विषयमें यह मननयोग्य मन्त्र देखिये--

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥
(अथर्ववेद १२।१)

'वह हमारी मातृभूमि मुझे अर्थात् अपने पुत्रको बहुत दूध देवे।' यह मंत्र कितना अच्छा है और आलंकारिक है देखिये। माता और पुत्र का सम्बन्ध दूध पीनेसे ही शुरू होता है। माताका दूध पुत्र पीता है, यह सब जानते हैं। गाय का दूध हम सब पीते हैं, इसलिये गाय हमारी माता है। भूमिका अनाज रस आदि दूध हमें मिलता है, इसलिये वह हमारी माता है। यह सर्वसाधारण और सीधा व्यवहार है। इसका वर्णन करते समय उपरोक्त मन्त्रका जो भाग अर्थात् 'मेरी माता मुझेही दूध देवे' और इसी तरह के वर्णनसे 'हमारी मातृभूमिमें पैदा होनेवाले उपभोगके पदार्थ हमें ही मिलें और दूसरा कोई उन्हें हमसे दूर न ले जावे,' आदि अर्थ का जो भाग है, वह बहुत अच्छा है और बोधप्रद है। इस तरफ पाठकगणोंको अवश्य ध्यान देना चाहिये।

अब कोई यह भी कह सकता है कि, 'भूमि या हमारी भूमि' आदि शब्दोंसे 'हमारी राष्ट्रभूमि' यह भावार्थ नहीं निकल सकता और इस बात को विना सिद्ध किये, हम यह भी नहीं कह सकते कि मातृभूमि के बारेमें हमारे धर्मग्रथों में पूर्णरूपसे वर्णन दिया हुआ है। यह संदेह योग्य है और उसके निवारणके लिये हम यह मन्त्र पाठकोंके सन्मुख रखते हैं–

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे। (अथर्ववेद १२।८)

'वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्रमें (उत्तमे राष्ट्रे) तेज और बल बढावे।'

इसमें 'उत्तमे राष्ट्रे' का अर्थ और 'हमारी भूमि' का अर्थ एक ही है। 'हमारे उत्तम राष्ट्रमें' अर्थात् 'हमारी मातृभूमि में' तेज और बल की बाढ होवे। 'हमारी मातृभूमि में' या 'हमारे राष्ट्र में' आदि शब्दों का अर्थ यही है कि 'हम लोगोंमें' या 'हमारे देशबांधवों में' और यह बात साधारण विचार करनेवाला जान सकता है। परन्तु 'हम लोगों में' या 'देशबांधवों में तेज और बल बढे' कहने से यह कहना कि 'हमारे राष्ट्र में या हमारी मातृभूमिमें तेज और बल बढे,' उच्च भावना प्रदर्शित करता है। इसी दृष्टि से 'मातृभूमि, हमारा राष्ट्र, हमारा देश' आदि शब्दों में कितना गूढ रस भरा हुआ है।

अब इसी मंत्र के 'उत्तमे राष्ट्रे' (हमारे अच्छे राष्ट्रमें) शब्द और भी एक उच्च भाव प्रदर्शित करते हैं। उसका अब विचार करना चाहिये। राष्ट्रभक्तों की दृष्टिसे राष्ट्र किस दशामें होना चाहिये, वह इन शब्दोंसे स्पष्ट है। इन शब्दों से सूचित होता है कि राष्ट्रभक्तों की महत् आकांक्षा होनी चाहिये कि, हमारा राष्ट्र सब राष्ट्रोंमें उत्तम हो'। 'तर, तम' तुलनात्मक उच्चता बतलाने वाले प्रत्यय हैं। 'उत्. उत्तर और उत्तम' उच्चताकी तीन सीढियां बतलाते हैं। 'उत्तम' से सर्वोत्कृष्ट अवस्था मालूम होती है। राष्ट्रभक्तों की प्रबल इच्छा होनी चाहिये कि हमारा राष्ट्र सब राष्ट्रों में अति उत्तम दशामें हो। इस इच्छा से प्रेरित हो, उन्हें चाहिये कि वे अपने राष्ट्रको अत्युच्च कोटिका बनानेमें शक्ति भर प्रयत्न करें। उक्त शब्दका यही भाव है कि राष्ट्र के किसी दशा में स्वतन्त्र वा परतन्त्र होनेसे संतोष न होना चाहिये, अपि तु देशवासियोंका लक्ष्य होना चाहिये कि किसी निश्चित उच्चतम कोटि को पहुंचे और वे उस लक्ष्य की पूर्ति करनेमें भरसक प्रयत्न करें।

इस मन्त्र का विचार करने से मालूम हो सकता है कि इस वैदिक सूक्तमें केवल मातृभूमि की ही कल्पना नहीं है, बल्कि राष्ट्र के बारे में स्पष्ट भाव हैं और अपना राष्ट्र सब राष्ट्रों के आगे रहे, यह उच्च महत्वाकांक्षा

इसमें व्यक्त है। वाचक स्मरण रखें कि अपना धर्म इतनी उच्च राष्ट्रीय भावना जागृत करनेवाला है और वह इस आदर्श को स्पष्ट शब्दों में जनता के सन्मुख रखता है। जिस किसी को सन्देह हो, वह ऊपर लिखे वचनों को पढकर उसे दूर कर ले।

इतना स्पष्ट उपदेश हमारे धर्मवचनोंमें होते हुए भी हमारे राष्ट्रमें राष्ट्रीय भावना यथोचित रीति से जागृत नहीं है। यद्यपि यह बात सच है, तो भी इसका कारण धर्म अयोग्य होना नहीं है, परन्तु धर्म की ओर ध्यान न देना और दूसरी अयोग्य बातों की ओर ध्यान देना है। जिस वेदमें यह उच्च राष्ट्रीय भावना जागृत करनेवाले वचन हैं, उसके प्रति लोगोंमें जो श्रद्धा या विश्वास है, वह केवल दिखावटी है। लोग आधुनिक ग्रथोंपर ही अधिक विश्वास करते हैं। इसीलिये सच्चा सोना दूर रह गया और मिट्टी हाथ लगी है।

अपनी मातृभूमि और अपने राष्ट्रके बारेमें इस तरह स्पष्ट विधान अथर्ववेदीय मातृभूमिके गीतोंमें हैं। उन गीतोंको देखनेसे सिद्ध होगा कि हमारा धर्म शुरूसेही राष्ट्रीय भावना जागृत रखनेवाला और उसकी वृद्धि करनेवाला है। यह भूलना नहीं चाहिये कि राष्ट्रके सम्बन्धमें जो कर्तव्य है, वह अपने धर्मका मुख्य भाग है।

अध्यात्मज्ञान और राष्ट्रभक्ति।

हम लोगोंमें धार्मिक बातों की ओर कितना दुर्लक्ष हो रहा है, यह उदाहरण देकर बतलाना अयोग्य नहीं होगा। अध्यात्मज्ञानका और मातृभूमिकी भक्तिका एक दूसरे से सम्बन्ध है, ऐसा यदि कहा जाय, तो उसे कोई सत्य नहीं समझेगा। इतना दुर्लक्ष उसकी तरफ हो रहा है। अध्यात्म-विचार करनेवाले वेदान्ती सब संसार को छोडकर किसी गुफामें जाकर बैठने का प्रयत्न करते हैं और जिनको सब लोग राष्ट्रभक्त कहते हैं वे लोग

साफ कहते हैं, कि धर्मका राजकारण में कोई सम्बन्ध नहीं है। इस विरोध के समय यदि कोई कहे कि "अध्यात्मविद्या और राष्ट्रभक्तिका निकट सम्बन्ध है, तो उसे कौन सच मान सकता है?" वास्तविक स्थिति देखनेके पूर्व हम इतिहासके एक दो उदाहरण देखेंगे और यह विषय कैसा होना चाहिये इसका निर्णय करेंगे।

अर्जुन युद्धभूमि में उतरा था और शत्रुको जीतने की महत्वाकांक्षा रखकर उसने युद्ध की तैयारी की थी। पर युद्ध का प्रारम्भ होनेके समय ही वह मोहमें पड गया और जंगलमें जाकर तपश्चर्या करनेके लिये तैयार हो गया। वह सोचने लगा कि युद्ध करके स्वराज्य लेनेसे तपश्चर्या करके उच्च अवस्था प्राप्त कर लेना कहीं अधिक उच्च है। तब भगवान् श्री कृष्णजीने अर्जुनको वैदिक अध्यात्मविद्याका उपदेश किया। यह भगवद्गीता का उपदेश सुनकर अर्जुन का मोह दूर हो गया, उसे उसकी अवस्था का ज्ञान प्राप्त हो गया और वह शत्रुको मारने के लिये तैयार हो गया। इसके बाद उसने युद्ध किया और निष्कंटक स्वराज्य पूर्णतासे प्राप्त कर लिया।

दूसरा उदाहरण श्रीरामचंद्रजीका है। रामचंद्रजीका विद्याभ्यास पूर्ण होनेपर उन्हें यह भ्रम हुआ कि 'सब बातें दैवाधीन हैं और पुरुषार्थ से कुछ नहीं हो सकता।' इस भ्रमके कारण उन्होंने पुरुषार्थ के काम करना छोड दिया। तब वसिष्ठ ऋषिने उन्हें वेदान्तशास्त्र का-- अध्यात्मशास्त्रका-- उपदेश किया। इस उपदेशके बाद उनका भ्रम दूर हो गया और वे प्रबल पुरुषार्थी बन गये। इसके बाद उन्होंने लंकाद्वीप के राक्षसों का नाश किया, संपूर्ण भरतखंडके ३३ कोटि देवोंको बंदिवाससे मुक्त कर पूर्ण स्वतंत्र बना दिया और क्षत्रियोंका यश उज्ज्वल बना दिया।

इन दोनों उदाहरणों में यह बतलाया है, कि अध्यात्मज्ञान से प्रबल पुरुषार्थ करना, स्वराष्ट्र के शत्रुओंका पूर्णतासे नाश करना और राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर लेना हो सकता है।

श्रीशिवाजी महाराज को भी एक दो समय उदासीनताने आ घेरा था और वह रामदासस्वामी और संत तुकाराम के उपदेशसे दूर हुई । ये बातें महाराष्ट्रके इतिहास में हैं । इन सब बातोंका विचार करनेपर हमें यह कहना पडता है, कि अध्यात्मज्ञान या वेदान्तज्ञान राष्ट्रीय इच्छाके विरोधी नहीं है । यह इतिहास देखने के बाद हम जिस मातृभूमि के वैदिक गीतके बारे में विचार कर रहे हैं, उसके आगे के और पीछे के सूक्तोंमें कौनसे विषय आये हैं, देखो —

यह मातृभूमि का वैदिक राष्ट्रगीत अथर्ववेदके १२ वें कांड का प्रथम सूक्त है । इसके पूर्व जों सूक्त हैं, वे सूक्त और उनके विषय क्रमसे आगे दिये हैं-

दशम कांड

सूक्त दूसरा	केनसूक्त (केन उपनिषद् का विषय] ब्रह्मविद्या ।
सूक्त ३ से ६ तक	शत्रुका नाश करना ।
सूक्त ७ और ८	ज्येष्ठ ब्रह्मसूक्त (ब्रह्मज्ञान) ।
सूक्त ९	शत्रुपर शस्त्रप्रहार करना ।
सूक्त १०	गौमाताका रक्षण । गौको दुःख देनेवाले शत्रुका नाश करना ।

एकादश कांड

सूक्त १.	ब्रह्मौदन सूक्त (अन्नसूक्त)
” २.	रुद्रसूक्त (पशुपतिसूक्त)
” ३.	ओदनसूक्त (भात, अन्न)
” ४.	प्राणसूक्त (प्राणशक्तिका वर्णन)
” ५.	ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य पालन करना)
” ६.	कालचक्रवर्णन ।

सूक्त ७. उच्छिष्ट ब्रह्मसूक्त (संपूर्ण जगत्के धारण करनेवाले ब्रह्म का सूक्त)

" ८. ब्रह्मसूक्त (शरीरमें प्रविष्ट होनेवाले ब्रह्मका सूक्त।)

" ९. और १०. युद्ध की तैयारी का सूक्त।

द्वादश कांड सूक्त १ मातृभूमि का वैदिक गीत।

इन सूक्तों के क्रम में युद्ध, शत्रुनाश आदि विषयोंके पहिले ब्रह्मज्ञान के सूक्त आये हैं। ब्रह्मज्ञानके बाद शत्रुका नाश करनेका विषय आया है। अथर्ववेदके दशम कांड में ऐसा दो वार निर्देश है। ग्यारहवें कांड में अन्न, प्राण, ब्रह्मचर्य, काल आदि के बाद ब्रह्मज्ञान है, उसके बाद युद्ध की तैयारी का वर्णन है और उसके बाद मातृभूमिका वैदिक गीत है। सूक्तोंका यह क्रम देखनेसे स्पष्टता से मालूम होता है कि "ब्रह्मज्ञान के बाद स्वातंत्र्यके लिये युद्ध होता है।" वाचकोंको यह विधान कदाचित् आश्चर्यकारक मालूम होगा। इसलिये ऊपर दिये हुए सूक्तों का अर्थ समझनेके लिये और यह जाननेके लिये कि हमने किया हुआ विधान योग्य है या नहीं, प्रत्येक सूक्तमेंसे नमूनेके लिये एक एक मंत्र यहां देते हैं।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥
तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥३२॥

(अथर्ववेद कांड १०, सू०२)

"अष्ट चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त देवोंकी अयोध्या नगरी है। उस नगरीमें तेजोयुक्त स्वर्गकोश है। उस कोश में जो पूज्य देव है, उसे ब्रह्मज्ञानीही जानते हैं।" यह हृदयस्थानीय ब्रह्मका वर्णन देखनेके बाद अगले सूक्तमेंसे शत्रुको छिन्नभिन्न करनेके मंत्र देखो—



तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्रमृणीहि दुरस्यतः।
(अथर्वं० १०।३।१)

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा॥ (अथर्वं० १०।६।१)

'दुष्ट शत्रुओंका नाश करना शुरू करो। दुष्ट शत्रुका सिर मैं तोडता हूं।' इस तरह ये सूक्त देखनेके बाद ७ और ८ सूक्तोंमें का वेदान्तवर्णन देखो—

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥३३॥
(अथर्वं० १०।७)

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥४३॥
(अथर्वं० १०।८।४३)

"चंद्रमा और सूर्य जिसकी आंखें हैं, अग्नि जिसका मुख है, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमन करता हूं। नौ दलके कमलमें जो देव है, उसे ब्रह्मज्ञानी ही जान सकते हैं।" यह ब्रह्मवर्णन देखनेके बाद उसीके आगेके सूक्तका पहिला मंत्र देखो—

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।
(अथर्वं० १०।९।१)

"पापी लोगोंका मुह बंद करो और यही शस्त्र शत्रुपर फेंको।" इसी तरह तीसरे प्रकारके सूक्तोंका क्रम है। उन सूक्तोंका विषय यहां नहीं बतलाते। केवल ११ वें कांडमें के आठवें सूक्तका एक मंत्र यहां देते हैं और बाकीके प्राण और ब्रह्मचर्यके सूक्तोंमेंका वर्णन विस्तारभयसे छोड देते हैं।

तस्माद्वै पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२॥

(अथर्व० ११।८।३२)

“इसलिये इस (पुरुषं) पुरुषको ब्रह्म कहते हैं। क्योंकि जिस तरह गायें अपनी गोशालामें रहती हैं, उसी तरह सब देवताएं इसीके आश्रयसे रहती हैं।” इस ब्रह्मज्ञानके सूक्तके आगेका सूक्त देखो–

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथा लोकं वितिष्ठध्वम् ॥२६॥

(अथर्व० ११।९)

“मित्रो! तैयारी करो, उठो! इस युद्धमें जीतनेके बाद अपने अपने देशको जाओ।” उसी तरह–

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम्।
विविद्धा ककजाकृता ॥२५॥ (अथर्व० ११।१०)

“शत्रुकी सेनामेंसे हजारों मुरदे युद्धभूमिमें पडें।” इस तरहका वर्णन अध्यात्मज्ञानके बाद कई बार आ चुका है।

इसे अचानक काकतालीय न्यायसे आया हुआ नहीं कह सकते, क्योंकि वह तीन जगह इसी तरह आया है। राम और अर्जुनके उपदेशके समय भी यही हुआ है। इसलिये ‘अध्यात्मज्ञानके बाद स्वातंत्र्यके लिये युद्ध’ होना स्वाभाविक है। इन सब सूक्तोंके बाद वैदिक राष्ट्रगीत आया है। इससे यह समझ सकते हैं कि जिस सूक्त के बारेमें यह लेख लिखा गया है, वह सूक्त वास्तवमें राष्ट्रीय महत्त्वका है, क्योंकि वह युद्धके समय आया है।

इस सूक्त बारेमें विचार करनेके पहिले हमें यही देखना चाहिये कि अध्यात्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान आदि विषयोंका युद्धादि राष्ट्रीय बातोंसे क्या सम्बन्ध है।

अध्यात्मज्ञान।

बुद्धि, मन, अहंकार, प्राण, इंद्रिय और शरीरके सब अंगोंको आत्माका आधार है। ये बडी शक्तियां हैं। इन शक्तियोंका ज्ञान होना अध्यात्मज्ञान कहलाता है।

ये सब शक्तियां हममें हैं। हम बिलकुल क्षुद्र नहीं हैं। हमारे अधीन ये बडीबडी शक्तियां हैं। उनको चलानेवाले हम हैं। यह अपनी शक्ति अध्यात्मज्ञानने मालूम होती है। अध्यात्मज्ञान प्राप्त करनेके पूर्व जो मनुष्य अपनेको क्षुद्र और निर्बल समझता है, वह यदि अध्यात्मज्ञान प्राप्त करनेपर स्वतःको सबल और समर्थ समझने लगे, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इसीलिये रामचंद्रजी जो अपनेको दैवाधीन और परतंत्र समझते थे, वे ही अध्यात्मज्ञान प्राप्त होनेपर दैव को भी अपने अधीन समझने लगे और अपने पुरुषार्थसे विपरीत दैवको भी अपने मनके अनुसार बनाने में समर्थ समझने लगे। यह शक्ति अध्यात्मज्ञान से प्राप्त हो सकती है।

ब्रह्मज्ञान।

विश्वव्यापी सच्चिदानन्दशक्ति का अस्तित्व स्थिर और चर सबमें एकसा है, इस ज्ञानसे संसार की ओर देखने की दृष्टि शुद्ध होती है।

उसे अपने अन्दर की शक्तिका और जगत् की शक्तियों का ज्ञान होता है, इसलिये उसे योग्य काम करते समय शोक या मोहका होना असम्भव है। वह अच्छे अच्छे लोगोंकी रक्षा करता है और दुष्ट लोगों का नाश करता है। वह धर्म का अच्छी तरह पालन करके लोगोंमें शांतता रखता है। जगत् की ओर देखने की उसकी दृष्टि उच्च होती है, इसलिये उसे स्त्री और बालबच्चों का मोह नहीं होता, घर या दौलतका लोभ नहीं होता, या ऐष-आरामके कारण वह अपने कर्तव्य को छोड नहीं सकता।

इसके सिवा इस ज्ञानसे दूसरा एक लाभ हो सकता है। वह यह है कि, पृथ्वीपर जितने युद्ध स्वार्थ के लिये होते हैं, वे नहीं होंगे और उनसे जिन सज्जनोंको कष्ट पहुंचते हैं, वे नहीं पहुंचेंगे। क्योंकि ब्रह्मज्ञान के कारण उसकी दृष्टि पवित्र हो जाती है और फिर वह स्वार्थके कारण दूसरेको परतंत्र करे या लूटे, यह बात असम्भव है। जगत्के सज्जनोंको दुःख देनेवालोंका नाश करने के लिये ही उसकी तलवार म्यानके बाहर निकलेगी। आजकल जिस तरह स्वार्थ से लडाइयां होती हैं, दूसरे राष्ट्र को निष्कारण लूटनेके लिये संघटित राष्ट्रीय अन्याय हो रहे हैं, केवल अपनी सेनामें तोपें हैं इसलिये दूसरोंको कष्ट देने और दूसरों की अवनति करनेके जो राक्षसों के समान भयंकर कार्य हो रहे हैं; यदि हरएक देशमें अध्यात्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान फैल जावे, तो वे सब बन्द हो जावेंगे। राष्ट्र की जो क्षात्र शक्ति है, वह बहुत बडी महाशक्ति है, उस शक्ति को ब्रह्मज्ञानी मनुष्यही अच्छी तरह सम्हाल सकता है। ब्रह्मज्ञानहीन स्वार्थी लोग इस राष्ट्रीय क्षात्र शक्तिका दुरुपयोग करके जगत्में जबरदस्तीका पापी साम्राज्य फैलाते हैं। इन सब बातोंका विचार करनेसे मालूम होगा कि पहिले ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके दृष्टि उच्च बनाना चाहिये और उसके बाद राष्ट्रीय महाशक्तिका उपयोग करना चाहिये। यही वेदों की आज्ञा है और यही उनकी अपूर्व दूरदर्शिताको बतलाती है। यह बात हमारे वैदिक धर्मने ही पहिले पहिल सब जगत् को प्राचीन कालमें बतलाई। यह बात यद्यपि अतिप्राचीन कालमें भरतखंडमें जारी थी, तथापि वह बादमें लुप्त हो गई और फिर वह कहीं भी शुरू नहीं हुई। यह बात फिर शुरू करनेके लिये हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहिये और यह बात जगतमें प्रचलित करनेपर जगत् में शांति रखनेका महामन्त्र सबको बतलाना चाहिये।

इस तरह ब्रह्मज्ञान युद्धके पूर्व क्यों होना चाहिये और उसका महत्त्व क्या है, यह सारांशमें बतलाया है। वास्तवमें यह बात विस्तृत करके

लिखनी आवश्यक है, परन्तु वैसा करनेके लिये जगह नहीं है। इसलिये यह विषय सारांशमें दिया है। अब इसके आगे वैदिक राष्ट्रीय गीतका स्वरूप बतलाते हैं।

यहांतकके लेखमें मातृभूमिके वैदिक राष्ट्रगीतके संबंध में सामान्य परिचय होने के लिये जितनी बातें आवश्यक हैं, उतनी दी हैं। इससे वाचकों को मालूम हो जायगा कि, इस राष्ट्रगीत का विचार राष्ट्रपुष्टि की दृष्टि से कितना महत्त्वका है। अब हमें यह देखना है कि इस राष्ट्रगीत के मन्त्र कौन कौनसी महत्त्वपूर्ण बातोंका उपदेश करते हैं। इसलिये प्रथम पहिलाही मन्त्र देखना चाहिये।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥१॥
(अथर्व० १२।१)

'सत्य, सीधापन, उग्रता, उदारता, तप, ज्ञान, और यज्ञ आदि गुण मातृभूमि को धारण करते हैं। वह हमारे भूत, भविष्यत् और वर्तमान स्थितिका पालन करनेवाली हमारी मातृभूमि हमें कार्य करने के लिये विस्तृत स्थान देवे।'

इस मन्त्र के पहले आधे भाग में यह स्पष्ट रीतिसे बतलाया है कि, मातृभूमि को कौन कौन से लोग धारण कर सकते हैं। वह सब विषय विशेष रीतिसे स्मरण रखनेयोग्य है। सब मनुष्य अपने राष्ट्रको धारण नहीं कर सकते और न उसका पोषण ही कर सकते हैं। जो लोग विशेष गुणोंसे युक्त हैं, वे ही राष्ट्र की उन्नति कर सकते हैं। दूसरे लोग सिर्फ संख्या बढानेके लिये कारणमात्र हैं। यह बात पहले मन्त्र से स्पष्ट है और यही यहाँ वाचकों को देखना चाहिये।

सर्वप्रथम राष्ट्रीय गुण 'सत्य' है। जिन मनुष्योंमें सत्यप्रियता, सत्य-पालनमें आत्मसर्वस्व अर्पण करने की तत्परता है, वे ही राष्ट्रका उद्धार

कर सकते हैं। जिन में सत्याग्रह है, अर्थात् जो सत्यका आग्रह से पालन करते हैं, वे ही स्वराष्ट्र का उद्धार कर सकते हैं। सूक्त का आरम्भ ही 'सत्य' शब्द से हुआ है। सूक्तके आरंभ का शब्द मंगलार्थक और सबसे अधिक महत्त्व का होता है। इस विचारसे भी सिद्ध होता है कि वैदिक राष्ट्रीयतामें 'सत्य' अत्यन्त महत्त्व का गुण है। अब यह बात सब पर प्रकट है कि सत्याग्रहरूपी शस्त्र को निःशस्त्र प्रजा शस्त्र-धारी राजा के विरुद्ध काम में ला सकती है और विजय भी पा सकती है। सत्यके व्यक्तिगत सत्य, सामाजिक सत्य और राष्ट्रीय सत्य आदि भेद हो सकते हैं। हिंदवासी व्यक्तिगत सत्यका पालन करने में संसार के अन्य लोगों की तुलना में अधिक तत्पर एवं दक्ष हैं, किन्तु वे सामाजिक और राष्ट्रीय सत्य अर्थात् सामुदायिक सत्य का पालन नहीं कर सकते। सामुदायिक सत्यपालनके अभ्यास ही से सत्याग्रह का मार्ग सफल हो सकता है। यदि भारतवासी जान लें कि सामुदायिक सत्य क्या है और उसका पालन किस प्रकार हो सकता है, साथ ही उचित रीतिसे उसका पालन करें, तो केवल इसी गुणसे उसका बृहत् कल्याण होगा।

उसके आगेका गुण 'ऋत' अर्थात् सीधापन है। वह भी सत्यके समान महत्त्वपूर्ण है और उस का आचरण सत्य के बाद होता है। जो मनुष्य सत्य का पालन नहीं करते और जिनका आचरण सीधा नहीं है, उनकी सच्ची उन्नति होना असम्भव है। वे खुद अवनत होंगे, इतनाही नहीं बल्कि उनसे जिनका संबंध है, वे भी गढे में गिरेंगे।

उग्रता शूर वीरों का गुण है। इस गुण से मंडित जो क्षत्रिय हैं, वे सत्याग्रह के सीधे मार्गसे अपने राष्ट्रका धन वढा सकते हैं। दक्षता अगला गुण है और वह दाक्षिण्यको वतलाता है, जो प्रत्येक कार्य में आवश्यक है। दक्षता के सिवा किसी भी कार्यमें यश प्राप्त नहीं हो सकता, यह सब लोग जानते हैं। अतः उसके बारे में अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

तप उसके आगे का गुण है। यह गुण राष्ट्रीय महत्त्व का है। कर्तव्य कर्ममें शीत–उष्ण, हानि–लाभ, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व आनेपर भी उन्हें सहकर आगे पैर बढाना ही तप का अर्थ है। यदि किसी को धूपमें थोडी देर घूमने से गर्मी होगी, ठंडमें काम करने से बधिरता आवे, तो ऐसे कोमल मनुष्यसे राष्ट्रका कोई भी काम नहीं हो सकता, अतः यह बात निर्विवाद है कि सर्दी और गर्मी सहना आदि तप राष्ट्रीय सद्गुणों में शामिल हैं। आजकल अपने देशमें लोग तपके नामपर जिसका आचरण करते हैं, वह वैयक्तिक महत्त्व का है। राष्ट्रीय महत्त्व का तप दूसरा ही है और उसे किये बिना राष्ट्रीय दृष्टिसे अपनी उन्नति नहीं होगी।

अगला राष्ट्रीय गुण 'ब्रह्म' अर्थात् 'ज्ञान' है। 'ज्ञानान्मोक्षः' इस सूत्र को सब लोग जानते हैं। पर वह राष्ट्रीय दृष्टि से भी सत्य है, यह बात बहुत थोडे लोग जानते हैं। ज्ञान से जिस तरह किसी व्यक्तिकी आत्मा बंधनसे मुक्त होती है वैसीही व्यक्ति भी मुक्त हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञान से राष्ट्र भी दूसरों की अधीनतासे मुक्त होता है और इस तरह राष्ट्र स्वतन्त्र हो सकता है। आजकल की भरतखंड की पराधीनता का कारण अधिकतर भौतिक विज्ञानशास्त्रों के ज्ञान का अभाव है। वह इस विज्ञानकी प्राप्ति के बिना दूर नहीं हो सकती और यदि दूर हो गई, तो भी स्वतंत्रता की रक्षा करना कठिन होगा। यह बात सूर्यप्रकाशके समान सिद्ध है। जागृत राष्ट्रको चाहिये कि वह अपना ज्ञान संसारके ज्ञानके बराबर रखे, या संसारके आगे अपने राष्ट्रका ज्ञान जावे, इस के लिये प्रयत्न करे। तभी राष्ट्रकी स्वतंत्रता की रक्षा हो सकती है। स्वाधीनता से ज्ञान का संबंध अनादिसिद्ध है।

इसके आगेका गुण यज्ञ है। 'यज्ञ' से आत्मसमर्पण का भाव प्रगट होता है। राष्ट्रोन्नतिके लिये आत्मसमर्पण करने की तैयारी लोगोंमें होनी

चाहिये, तभी राष्ट्रोन्नति होना सम्भव है, उसके अभावमें कदापि राष्ट्रोन्नति नहीं हो सकती।

वैदिक राष्ट्रगीतके पहले मन्त्रने यह महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया है। अपने राष्ट्रकी उन्नति किन गुणोंके बढनेसे होगी और किन गुणों के अभावसे अपने राष्ट्रका अधःपात होगा, यह सब इस मन्त्रने स्पष्ट रीतिसे बतलाया है और उसका उपयोग आज भी होनेलायक है।

राष्ट्रीय उन्नति करनेवाले गुण 'सत्यपालन, सीधा बर्ताव, उग्रता या शौर्य, दक्षता या तत्परता, सत्कार्य करनेके लिये आवश्यक परिश्रम करनेका सामर्थ्य या वह करते समय होनेवाले शीत और उष्णताको सहनेका सामर्थ्य, ज्ञान और बडे कार्यके लिये आत्मसमर्पण करनेकी इच्छा।' यदि ये गुण जनतामें या जनताके मुखियोंमें हों, तोही उस राष्ट्रका उद्धार हो सकता है और यदि न हों तो नहीं।

अब उन अवगुणोंको देखिये, जो राष्ट्रकी अवनती करते हैं—

'सत्यका पालन न करना अथवा सत्यकी पर्वाह न कर मनमाना आचरण कर येन केन प्रकारेण जीवन व्यतीत करनेकी प्रवृत्ति रहना, कपटका आचरण, कायरता वा शौर्यका अभाव, दक्षताका अभाव, परिश्रम करनेकी शक्ति न रहना, अज्ञान, आत्मसमर्पणके लिये तैयार न रहना।' पाठकगण स्वयं ही विचार करें कि हम लोगोंमें उपरि उक्त राष्ट्रीय गुणोंकी अधिकता है, या अवगुणोंकी। इस बात का विचार करनेही से उनपर प्रकट होगा कि आज हमें क्या करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार मन्त्र के प्रथम अर्धमें राष्ट्र को धारण करनेके लिये आवश्यक गुणों की वृद्धि करनेका उपदेश है। तत् पश्चात् उत्तर अर्धमें एक महत्त्वपूर्ण आकांक्षा जनता के सम्मुख रखी गई है। वह इस प्रकार है- 'हमारी मातृभूमि हमारे भूत-भविष्य-वर्तमान कालकी परिस्थिति की देवता है। वह हमें अपने देशमें विस्तृत कार्यक्षेत्र देवे।'

राष्ट्रभक्त मातृभूमि के उपासक हैं। उनके सब कार्य मातृभूमि को ही अपने उद्देशों का केन्द्र समझकर हो सकते हैं। अतएव स्पष्ट ही है कि राष्ट्रभक्तों के भूतभविष्य-वर्तमान काल की नियामक देवता मातृभूमि ही रहेगी। भूतकाल में उन्होंने मातृभूमि की जैसी सेवा की होगी वैसी ही उनकी वर्तमानकालकी स्थिति होगी। वर्तमान कालमें वे जैसी उपासना करेंगे, उसीके अनुसार भविष्यत्में उनकी स्थिति होगी। अतएव राष्ट्रभक्त सदैव मातृभूमि की उपासना उत्तम रीतिसे करें। वे कोई भी ऐसा घातक बर्ताव न करें, जिससे उनकी अवनती होगी।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह ऐसी आकांक्षा धारण करे कि 'मेरे राष्ट्र में मुझे विस्तृत कार्यक्षेत्र प्राप्त हो।' यदि अनुकुल परिस्थिति न हो, तो उसे प्राप्त करने में कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। अपने को अपने घर में व्यवहार करने में जैसी पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, उसी प्रकार स्वदेश में भी रुकावटें न होनी चाहिये। लोगोंको अपने अपने देशमें पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये, दूसरे हस्तक्षेप कदापि न करें और देश-वासियों की उन्नति में विघ्न बाधाएं न डालें। अपने अपने घर में हर एक स्वतंत्र हो। हमारे देश में हमें विस्तृत कार्यक्षेत्र मिलनाही चाहिये। दूसरों को हमारे देशमें विस्तृत कार्यक्षेत्र मिले और हमारा कार्यक्षेत्र प्रतिदिन घटता जाय यह परिस्थिति जितने जल्द हो सके, बदलनी चाहिये। उसे बदल देना ही हमारा प्रथम आवश्यक कर्तव्य है।

पाठक गण प्रथम मन्त्र के इस आशय को विचारें और वैदिक राष्ट्रगीत के उच्च ध्येय का अनुभव करें।

यदि राष्ट्रकी उन्नति साधना है, तो राष्ट्रभक्तोंमें आवश्यकता है एकता की। विना ऐक्य के सामुदायिक कार्य का सिद्ध होना असंभव है। सब लोग इस बात को मानते हैं। किन्तु लोग यही नहीं समझते कि यह राष्ट्रीय एकता अपने देशमें किस प्रकार साध्य होगी। लोगों का कथन है

कि हमारे देश में भिन्न भिन्न धर्मके लोग हैं, अनेक भाषाएं और विविध जातियां हैं। रीति-रिवाजों में भी अनेक भेद हैं। ऐसी दशामें एकता हो ही कैसे सकती है? यह कहकर लोग निराश हो चुप बैठ जाते हैं। एकता के लिये ज्यों ज्यों प्रयत्न करते हैं, त्यों त्यों फूट ही बढती हैं। एकता के लिये जो प्रयत्न या उपाय किया जाता है, वह अधिकाधिक फूट का ही फल देता है। इसी कारण राष्ट्रभक्त घबडा गये हैं। ऐसे ही समय निम्न लिखित वैदिक राष्ट्रगीतका मन्त्र बहुत ही विचारणीय एवं बोधप्रद होगा। देखिये—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रंधारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥

(अथर्व० १२।१।४५)

'(वि-वाचसं) अनेक भाषा बोलनेवाली और (नानाधर्माणं) नाना धर्मों से युक्त जो जनता है, उसे (यथा ओकसं) एकही घर के समान धारण करनेवाली मातृभूमि धन के हजारों प्रवाह मुझे दे; जिस प्रकार उछलकूद न करनेवाली गाय दूध देती है, उसी प्रकार।'

राष्ट्र की प्रगति तभी हो सकती है जब कि विविध भाषा बोलनेवाले, विविध धर्मों को माननेवाले एवं विविध रीतिरस्मों पर चलनेवाले लोग एकही कुटुम्बके एकही घरमें रहनेवाले भाइयों के समान एकही देशमें रह सकें। (वि-वाचसं जनं) अनेक भाषा-भाषी लोगोंके रहते और (नानाधर्माणं जनं) विविध धर्मके अनुयायी होते हुए भी उन सबकी एक माता- सबकी आदि माता- यही मातृभूमि है, इससे सबको चाहिये कि आपसी भेदभाव भूलकर उसके सन्मुख खडे हों। मातृभूमि की उपासना करनेमें भाषाका भेद, प्रांत का भेद, धर्म का भेद या जाति का भेद आड न आना चाहिये। सब लोगों को चाहिये कि वे सब मिलकर यही समझें कि वे सब (यथा ओकसं) एकही घरमें रहनेवाले एकही कुटुम्बके

लोग हैं और सब लोग अन्य किसी भेद को प्रधानता न देकर अपनी अभेद्य एकता मानें।

एकही घरके लोगोंमें कुछ बडे, कुछ छोटे, कुछ मध्यम, कुछ गोरे, कुछ सांवले, कुछ न गोरे न सांवले, कुछ बूढे, कुछ युवा, कुछ पुरुष और कुछ स्त्रियां रहतीं हैं। एकही घरके लोगोंमें इतने भेद रहते हैं !!! इनमें से प्रत्येक यदि कहे कि 'मैं अन्य सबसे भिन्न हूं,' तथा अपनी भिन्नताके कारण उसने कुटुम्बके हितकी ओर दृष्टि न दी, तो उस घरका, उस कुटुंब का नाश होनेमें देरही क्या ? इसके विरुद्ध यदि उस घरके निवासी उस कुटुंबके घटक क्षुद्र भेदोंको भूल जावें और अपने मनमें यही मुख्य विचार रखें कि सारे कुटुंबका हित हो, तो वही घर नंदनवनके समान आनन्दसे भरा हुआ दिखेगा। जहां कहीं मनुष्य है, वहां भेद अवश्य ही होंगे। किन्तु मनुष्य का धर्म यही है कि क्षुद्र भेदोंको गौण समझकर सब मिलकर अपने घरका, अपने देशका, अपने राष्ट्रका हित साधन करें। राष्ट्रगीत में यही बात बतलाई है। राष्ट्रके घटक जिस समय आपसी क्षुद्र भेदों को प्रधानता देकर आपसमें लडते झगडते हैं, उस समय राष्ट्रकी शक्ति क्षीण होती है। परन्तु जब भेदभावों को मिटाकर वे सब मिलकर देशहित का कार्य करनेमें लग जाते हैं, तब उनकी शक्ति बढती है और उनकी उन्नति होती है।

किसी भी देशको या किसी भी राष्ट्र को देखिए। भाषा, जाति, वंश, धंधे आदि अनेक कारणोंसे उसमें अनेक भेद होते ही हैं। आज संसारमें एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं, जिसमें उपर्युक्त भेदोंका नामनिशान न हो। परन्तु विचारशील राष्ट्रके समंजस लोग इन भेदभावों की ओर ध्यान नहीं देते। वे यही समझते हैं कि राष्ट्रहित ही उनका लक्ष्य है। बस अपने लक्ष्यपर दृष्टि रख वे एकता से उसी की प्राप्ति में लग जाते हैं। आपसमें लडाई–झगडा करनेवाली जातियां भी जब देखती हैं कि सारे राष्ट्रपर

आपत्ति आ गई है, तो वे आपसी झगडे छोड देती हैं, आपसमें मिल जाती हैं और राष्ट्रीय आपत्तिसे मुठभेड करती है। परिणाम यही होता है कि उस आपत्तिसे वे बच जाते हैं। परन्तु इसके विपरीत जो लोग अपने भेदभावोंकी ओर ही दृष्टि रखते हैं, जो राष्ट्रीय हित की ओर नहीं देखते, जिन्हें राष्ट्रकी अपेक्षा अपने भेद ही अधिक महत्त्व के मालूम होते हैं, वे क्षुद्र भेदभावोंमें ही फंसे रहते हैं और अपनी उन्नति कभी भी नहीं कर पाते। भेदोंके रहते भी जो उसीमें अभेद का अनुभव लेने को तयार रहते हैं, वे ही कुछ राष्ट्रहितका साधन कर सकते है।

हमारे हिंदुस्थान में ही सब मनुष्य भेदभावोंसे विभक्त हैं, यह नहीं। किन्तु अन्यान्य देशों का भी यही हाल है। तब क्या इस देशके निवासियों को उचित है कि वे ही अपने भेदोंको सदा बढाते रहें और इससे अपने शत्रुको मदद दें? क्या भारतवासी इस महत्त्वकी बात का विचार न करेंगे? जो लोग सदैव यही चिल्लाते रहते हैं कि "प्रथम आपसी भेदभावोंको मिटा दो" उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि ऐसा समाज जिसमें भेद-भावोंका बिलकुल अभाव हो, न कभी इस पृथ्वीतल पर था, न अब विद्यमान है और न भविष्यत्में भी होनेकी संभावना है। किसी भी देश में किसी भी समय जो बात कभी न हुई, वह इस देशमें कैसे हो सकती है? सब देशोंमें एक बात साध्य हुई है और वह है आपसी भेदोंको मर्यादा का उल्लंघन न करने देना। बस यही बात हमारे देशमें भी साध्य हो सकती है। अतएव उचित यही है कि लोग असाध्यको साधनेके प्रयत्न में न लगें, परन्तु साध्य बातों को ही करें और अपनी उन्नति कर लें।

भारतवर्ष में तीन धर्म विद्यमान हैं; (आर्य) हिंदु, मुसमानी और ईसाई। यह समझ कि जब तक ये तीन धर्म हैं, तब तक स्वराज्यके लिए प्रयत्न न करना, अथवा ये तीन भेद नष्ट होकर जब सबका मिलकर कोई नया धर्म बनेगा, तभी स्वराज्यप्राप्ति का प्रयत्न करना, निरा अज्ञान है।

इन तीन भिन्न धर्मों के रहते भी सबको मिलकर मातृभूमि की उपासना के लिए तैयार होना चाहिए। यह तो असम्भव है कि तीनों धर्म सदा के लिये नष्ट हो जांय। इन भिन्न धर्मोंके रहते भी सबको देखना चाहिये कि अपना 'अभिन्न राष्ट्रधर्म' है। जातिभेद, भाषाभेद, वर्णभेद आदि अनेकानेक भेद अवश्य ही रहेंगे। इन भेदोंका सदाके लिए नष्ट होना यदि सम्भव माना जाय, तो उसे इतना अधिक समय लगेगा कि उसके साध्य होनेतक स्वराज्यको दूर रखनेसे हमारी बडी भारी हानि ही होगी। अतएव हरएक मनुष्य को, हरएक व्यक्तिको यही सीखना आवश्यक है कि अनेक भेदोंके रहते भी उन्हें भूलकर एक घरके एक कुटुम्बके भाइयोंके समान एकतासे रहें। इस मन्त्र का यही उपदेश है और हरएक राष्ट्रभक्त उसपर ध्यान दे। अब आगेका मन्त्र देखिए:-

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥
(अथर्व० १२।१)

'जिस मातृभूमि के मनुष्यों में उच्चता, नीचता और समता के संबंध में (बहु अ- संबाधं) बहुत ही निर्वैरता है, अर्थात् झगडे नहीं हैं और जो नाना गुणों से युक्त औषधि उत्पन्न करती है, वह हमारी मातृभूमि हमारी (प्रथतां) कीर्ति वा ख्याति बढावे।'

यह मन्त्र बताता है विषमता होते हुये भी राष्ट्रीय हितका साधन कैसे करना चाहिये। मनुष्य का भेदभाव पूर्णतया मिटाने की चेष्टा भले ही की जाय, पर शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि, आत्माके न्यूनाधिक विकास के कारण तथा उनकी व्यवहारकुशलताकी न्यूनाधिकता से उनमें उच्च, नीच, मध्यम आदि भेद रहना स्वाभाविक है। अतएव संभव नहीं कि सब मनुष्य समान योग्यता के, बिलकुल एकसे बनें। ऐसी असमानता रहनेपर

भी प्रयत्न यह होना चाहिये कि, उनके अभेदकी ओर ही ध्यान देकर सब का उत्कर्ष हो।

मंत्र में 'अ-सं-वाध' शब्द है। वह अतीव महत्त्वका है। गौण भेदोंको प्रधानता दी जाय, तो एक समाज के मनुष्योंका दूसरे समाज से विरोध होने लगेगा। एक समाज दूसरेको प्रतिबंध करने लगेगा। दूसरेको मिटाकर स्वयं ही जीवित रहनेका प्रयत्न करने लगेगा। ऐसा होने से जातियों में 'संबाध' उत्पन्न होता है। जाति-जातिके झगडे, विरोध आदि बातें इस शब्दसे बतलाई जाती हैं। परस्पर वाधा करनेही का नाम 'संबाध' है। सम्बाधका अर्थ है आपसी युद्ध। जब युद्ध होने लगते हैं, तब राष्ट्र की शक्ति क्षीण होती है। जब एक समाज दूसरे समाजको बाधा पहुंचाता है, एक जाति जब दूसरी जातिको कष्ट पहुंचाने लगती है, तब राष्ट्र क्षीण होता है। इसीलिए राष्ट्रहितकी दृष्टिसे जाति-जातिमें, समाज-समाजमें एकताका होना परम आवश्यक है। यही बात बतलानेके हेतु मन्त्रमें कहा है—

'यस्याः मानवानां मध्यतः बहु असंबाधम्।'

'जिस मातृभूमिके मनुष्योंमें बहुत निर्वैरभाव रहता है,' वही मातृ-भूमि अपने सुपुत्रों को उत्तम धन दे सकती है। परन्तु जिस भूमिके लोक आपसमें वैरभाव रखते हैं, वहां की जनता आधा पेट रहती है। कोई ऊंचा हो, कोई ज्ञानी हो, कोई अज्ञानी, पर शरीरसे हृष्टपुष्ट हो। सबको चाहिए कि वे जो कुछ करेंगे, मातृभूमिके लिये करें। अपने गुणाधिक्यके घमण्डसे उन्हे गुणहीनोंको वा न्यून गुणवालोंको न दबाना चाहिए। कुछ लोग गूंगे हों और कुछ वाचाल हों, तो दोनों मिलकर, आपसमें न लडकर दोनोंको अपनी शक्तियोंका मेल करना चाहिए और उन्हें मातृभूमिकी वेदीपर चढा देना चाहिए। तभी राष्ट्रकी उन्नति होगी। मनुष्यमें जो (उद्वतः) उच्चता, (समं) समता, और (प्रवतः) नीचता रहती है, वह एक दूसरेका

घात करनेके लिए कदापि नहीं है। एक मनुष्य यदि किसी एक बातमें ऊंचा है, तो वह दूसरी बातोंमें नीचा होगा। बडा विद्वान् ज्ञानमें ऊंचा होगा, तो शक्तिमें उसका दर्जा कम हो सकता है। कोई शक्तिशाली पहलवान हो, तो ज्ञानमें उसका हलका होना सम्भव है। किन्तु मातृभूमि को दोनों प्रकारके मनुष्योंकी आवश्यकता है। ज्ञानी मनुष्य ज्ञानके घमण्ड से और बलवान् शक्ति के घमण्डसे एक दूसरेके सिर न फोडें, बल्कि दोनोंको चाहिए कि वे मिलकर देशके शत्रुओंको दूर करें और अपनी उन्नति करें।

मानवोंका कर्तव्य यही है कि अनेक भेदोंके रहते भी अभेद-भावसे अपना मार्ग निकाले। जो मनन करनेमें समर्थ है, उसीको मानव कहते हैं। मनन करनेवाला झगडे उत्पन्न नहीं करता, वह सोच विचार कर झगडे कम करता है और उन्नतिके मार्गसे आगे जाता है। जो अपनी परिस्थिति का विचार नहीं करते, अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न नहीं करते, किन्तु आपसके झगडेही बढाते हैं, वे दो पैरवाले होनेपर भी मानव या मनुष्य नहीं कहे जा सकते।

इस मन्त्रका उपदेश हम लोगोंकी वर्तमान दशामें अच्छी तरह उपयोगी हो सकता है। उपर्युक्त मन्त्रोंके पढनेसे ज्ञात होगा कि इस वैदिक राष्ट्र-गीतके द्वारा देशवासियोंमें एकता बढानेके लिए जो कुछ कहा जा सकता है, कह दिया गया है। अब हम चाहें तो उसका उपयोग करें, चाहें तो न करें। यदि हम उससे लाभ न उठावें तो उसमें धर्मग्रन्थका क्या दोष? दोष है अनुयायियोंका। ऐक्यका उपदेश सुन लेनेपर प्रत्येकको जान लेना चाहिए कि हमारे देशके प्रति हमारा पुत्रत्वका नाता किस प्रकार है। इस सम्बन्धको जानकर उसे सदैव अपने मनमें जागृत भी रखना होगा। निम्न लिखित मन्त्रको अब देखिए-

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

"हे मातृभूमि ! तेरेसे उत्पन्न हुए हम सब मनुष्य तुझपर ही घूम रहे हैं। तूही द्विपाद और चतुष्पादका पोषण करती है। हम पांचों प्रकारके मनुष्य तेरेही हैं। हम मानवोंको प्रतिदिन उगनेवाला सूर्य अपने किरणोंसे तेज और अमृत देता है।"

इस मन्त्रमें सर्वप्रथम यही बतलाया गया है कि 'हम मनुष्य भूमातासे (त्वत्-जाताः) ही उत्पन्न हुए हैं और तुझपर ही घूमते फिरते हैं।' यह भाव स्पष्ट एवं असंदिग्ध है। प्रत्येक राष्ट्रभक्त अपने मनमें यही भाव रखता है। यदि नहीं रखता तो उसे अवश्य ही रखना चाहिए। तभी वह राष्ट्र की उन्नतिके योग्य कार्य कर सकेगा। मातृभूमि हमारी अलंकारिक वा काल्पनिक माता नहीं, वास्तविक माता है। यह अनुभव जितना जीवित होगा, उतनी ही दृढ भावनासे वह मनुष्य मातृभूमिकी सेवा करेगा।

यदि वाचक विचार करेंगे, तो वे जानेंगे कि हमारे देशमें जो जातीय झगडे होते हैं, उनका कारण यह है कि इस देशके निवासी नहीं समझते कि सचमुच हम सब मातृभूमिके पुत्र हैं। लोग अपने अपने पंथके हितकी दृष्टि रखते हैं। सबका मिलकर जो राष्ट्रधर्म है, उसका पालन कोई नहीं करता। इससे सबको एक राष्ट्रधर्मका बंधन नहीं रहता। प्रत्येक को अपना पंथही अधिक प्रिय होता है। सार्व-राष्ट्रीय धर्मके पालनकी कोई फिकर ही नहीं करता। ऐसे घातक विचार किसी भी देशके निवासियोंमेंसे किसी भी जातिके लोग न रखें। इसी मन्त्रमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि 'हम सब मातृभूमिके बालक हैं।' वाचक यदि इस अनुपम मन्त्रपर विचार करें, तो उन्हें विदित होगा कि आपसी फूट की यह अक्सीर दवा



है। मनुष्य किसी भी धर्म के या पंथके रहें, या उनमें जाति और वर्णके कारण कैसी भी भिन्नता क्यों न आई हो, यदि वे एक राष्ट्रधर्म से बंधे जायेंगे, तो परस्पर वैरभाव उत्पन्न ही न होगा।

हमारी मातृभूमि हम द्विपदोंका और अन्य चतुष्पादोंका उत्तम प्रकारसे पोषण करती है। इस स्वार्थी दृष्टिसे भी यदि देखें तब भी हरएक मनुष्यके लिए उत्तम बात यही होगी कि वह हृदयमें मातृभूमिकी भक्ति रखे और उसकी रक्षाके लिए सदैव तैयार रहे। हम अपने मकानकी रक्षा करते हैं, अपनी जमीनकी रक्षा करते हैं, यह सब हम इसी लिए करते हैं कि उससे हमारा हित होना है। हमारा हित मातृभूमिसे भी होता है। क्योंकि वही मातृभूमि मनुष्योंको और पशुपक्षियोंको अन्न, उदक आदि देती है और उनकी रक्षा करती है। यदि हम मातृभूमि की रक्षा न करेंगे, तो वह किसी दूसरेके अधीन हो जावेगी और तब हमारी आफत होगी, हमें भूखों मरनेकी नौबत आवेगी।

इस समय भारतियोंका यही हाल है। उन्होंने योग्य समय मातृभूमि की रक्षा न की अतएव अब हमें कष्ट सहने पडते हैं। इस आपत्तिके समय भी हम आपसी झगडोंको नहीं भूलते, और एकतासे मातृभूमि की सेवा करनेको तैयार नहीं होते !! गत कालमें हम लोगोंने जो गलतियां कीं, सो तो हो चुकीं। उनके बारेमें अब कोई कितनाही क्यों न कहें, वे बदल नहीं सकतीं। परन्तु उन गलतियोंका फल भोगते समय भी उनसे उचित शिक्षा न लेकर पुनःपुनः वेही भूलें करना और प्रतिदिन आपसी भेद-भावोंको बढाना भयंकर भावी आपत्ति का चिह्न है। क्या भारतवासी इसपर विचार न करेंगे ?

इस विचारको मनसें न रख कि "हे मातृभूमि ! हम तेरे बालक हैं।" हम समझते हैं कि हम अपने भिन्न भिन्न पन्थोंके हैं। इसके समान

दूसरी भयंकर भूल नहीं है। सर्वप्रथम हम अपने राष्ट्रके हैं, तत्पश्चात् अपने पंथके हैं। यही बाना हरएक मनुष्यको रखना उचित है। यदि मनुष्य यह बाना न रखें तो राष्ट्रहानि होना टाल नहीं सकते। वाचक देख सकते हैं कि अथर्ववेदके इस वैदिक राष्ट्र-गीतके प्रत्येक मन्त्रमें कैसे महत्त्वका उपदेश किया है। हमारी वर्तमान गिरी दशामें ये अनमोल उपदेश-रत्नही हमारा उत्थान कर सकते हैं। इतनाही नहीं वे हमारा यश चारों दिशामें फैला सकते हैं। प्रिय वाचक! आप इसी दृष्टिसे इन मन्त्रोंका विचार करें और उसके उपदेशोंको कार्यमें परिणत करें।

यहांतकके लेखमें बतलाया गया कि, मातृभूमिके वैदिक गीतकी साधारण बातें क्या हैं, तथा यह भी दिखाया गया कि जनतामें भिन्नता रहते हुए भी एकताका साधन कैसे करना चाहिए और मातृभूमिकी सेवाके लिये सब मिलकर किस प्रकार तैयारी करें। पिछले लेखोंसे वाचकोंको निश्चय हुआ होगा कि इस वैदिक राष्ट्रगीतमें राष्ट्र की उन्नतिके जैसे उच्च तत्त्वोंका समावेश हुआ है, वैसे तत्त्व अन्य किसी देशके राष्ट्रगीतमें नहीं हैं। तथापि आवश्यक यह है कि इस राष्ट्रगीतपर और भी कई दृष्टियों से विचार किया जाय।

जनतामें मातृभूमि के लिए प्रेम उत्पन्न होना चाहिए। यह प्रेम तभी हो सकता है जब कि देशके नगरों, पहाडों एवं अन्यान्य स्थानोंके प्रति आदर हो। आदर किसी विशेष महत्त्वके कारणसे ही हो सकता है। यदि हम कहें कि इसका आदर करो, तो हमारे कहनेसे कोई आदर न करेगा। किसी स्थानके प्रति आदर तभी हो सकता है, जब उसका किसी महत्त्वकी पुण्यमयी घटनासे सम्बन्ध हो, या उसका किसी महात्मा से सम्बन्ध हो, या अन्य किसी विशेष घटनासे उसका सम्बन्ध हो। अतएव हमें यह देखना है कि वैदिक राष्ट्रगीत इसकी सूचना किस प्रकार देता है—

देवों द्वारा बसाए हुए स्थान।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु॥४४॥
(अथर्व० १२।१)

"हमारी जिस मातृभूमिके नगर देवोंद्वारा बनाए गए हैं और जिसके खेतोंमें सब मनुष्य विविध काम करते हैं, उन सब पदार्थों को अपने गर्भमें धारण करनेवाली मातृभूमि को परमेश्वर सब दिशाओं में हमारे लिये रमणीय बनावे।"

अब इसके (यस्याः देवकृताः पुरः) 'जिसके नगर देवोंद्वारा बनाये गए हैं' वाला भाग देखिए। जनताको विश्वास होना चाहिए कि हमारी मातृभूमिके नगर देवोंने बसाए हैं, हमारे नगरोंसे देवोंका संबंध है, देवोंका देवत्व हमारे नगरोंने देखा है। इस प्रकार का जीवित विश्वास यदि जनता के मनमें स्थान बना ले, तो निश्चयही है कि अपने देशके बारेमें मनमें जागृति होगी।

इतिहासमें उल्लेख है कि हमारी हिंदभूमिके विविध नगरोंका सम्बन्ध देवोंसे हुआ है। भगवान् श्रीरामचंद्रजीका सम्बन्ध अयोध्यासे और रामेश्वरसे है। श्रीकृष्णजीका सम्बन्ध गोकुल, वृंदावन, तथा द्वारकासे है। इंद्र का सम्बन्ध इंद्रप्रस्थसे है। हमारे देशके आबालवृद्ध जानते हैं कि इस प्रकार अनेक नगरोंसे देवोंका सम्बन्ध है। नदियां, तालाव, सरोवर, पर्वत-श्रृंग, गुफाएं आदि स्थानोंसे देवदेवताओंका वा पुण्य पुरुषोंका सम्बन्ध रहा है। इसका हाल ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है और सब स्त्री-पुरुषोंको भी कथा-पुराण आदि सुननेसे मालूम हुआ है। गौरीशंकर और कैलासके पर्वत-शिखरोंका सम्बन्ध साक्षात् भगवान् शंकरके साथ है। बद्रीकेदारके आश्रमका संबंध नर-नारायण ऋषि-मुनियोंसे है। मातृभूमि

की दृढ भक्तिके लिए परम आवश्यक है कि यह संबंध देशके सब स्त्री-पुरुषोंको विदित होवे ।

कुछ अधिक शिक्षित लोग कहेंगे कि 'यह अन्धविश्वास किस लिए ? बिलकुल व्यावहारिक हितकी दृष्टिसे भी मातृभूमिके प्रति भक्ति हो सकती है ।' बात बिलकुल ठीक है । पर व्यावहारिक लाभके साथही यदि लोगों के हृदयमें ऊपर लिखे सम्बन्धोंका भी विचार आवे, तो भी नुकसान कुछ न होगा । बालक अपनी मातापर प्रेम करता है । वह इस लिए नहीं कि माता सुंदर है, या माता दूध देती है । वह प्रेम करता है क्योंकि 'मातृदेवो भव' के अनुसार माता एक देवता है । बालकका माताके प्रति प्रेम इसी दिव्य भावनाके कारण रहता है । बालकका माताके प्रति और माताका बालकके प्रति अकृत्रिम प्रेम रहता है । बदलेकी आशा न कर जो प्रेम किया जाता है, वही दिव्य प्रेम है; वही निरपेक्ष अकृत्रिम प्रेम है । इसी लिए मातृप्रेम व्यावहारिक प्रेम नहीं है । मातृभूमिका प्रेम भी इसी प्रकार अकृत्रिम, निःसीम, आत्यंतिक और दिव्य होना चाहिए । अकृत्रिम प्रेम उत्पन्न होनेके हेतु उपर्युक्त मन्त्रमें लिखा है कि अपने देशके नगरोंका संबंध देवोंसे है, यह बात सब लोगोंको मालूम रहना चाहिए और सब लोग यही सोचें कि हमारे नगर देवोंने बसाए हैं ।

जो ज्ञानी लोग आर्थिक वा व्यावहारिक हितकी दृष्टिसे मातृभूमि की भक्ति करते हों, वे भले ही वैसा करें । उसमें किसीकी रुकावट नहीं । परन्तु सब जनता उस कोटि की ज्ञानी नहीं हो सकती । अतएव साधारण लोगोंमें विशेष प्रेम उत्पन्न होवे, इसी गरजसे सबको मालूम होना आवश्यक है कि हमारे देशके स्थानोंका संबंध देवोंसे वा ऋषियोंसे है ।

प्रतापगढसे तथा सिंहगढसे शिवाजीमहाराजका सम्बन्ध, उदयपुरसे महाराणा प्रतापसिंहका संबंध, झांसीसे रानी लक्ष्मीबाईका संबंध, गढ मण्डलासे रानी दुर्गावतीका संबंध, परलीसे स्वामी रामदासका संबंध और

इसी प्रकार भिन्न भिन्न इतिहासप्रसिद्ध स्थानोंसे ऐतिहासिक व्यक्तियोंका सम्बन्ध मालूम होना परम आवश्यक है। सिंहगढका या अन्य किसी स्थानके उस स्थान का जिससे शिवाजीमहाराजका सम्बन्ध रहा है, यदि कोई भंग करे या अन्य इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तिके स्थानका कोई अपमान करे, तो उस दुष्ट कार्यसे संपूर्ण भारतके हृदयमें चोट पहुंचती है। संपूर्ण भारत उस दुष्ट कृत्यका जवाब पूछनेको तैयार हो जाता है। इसीमें राष्ट्रीय उन्नतिका बीज है।

इसीलिए जब विदेशी सरकार दूसरे देशपर अपना अधिकार जमाती है, तब उस देशके ऐसे इतिहासप्रसिद्ध स्थानोंको भुलानेमें दक्ष रहती है। वह तत्पर रहती है कि ऐसे स्थानोंका लोगोंको पता भी न रहे। इसका भी मर्म यही है। मुसलमानोंने प्रयागका नाम अलाहाबाद रखा, सहस्र-तीर्थ का नाम इस्लामाबाद रखा, मार्तण्ड को मटन कहा, बाबा महर्षिका बाप मोंइद्दिनसिं कर डाला, श्रीशंकराचार्यके स्थान को तख्त-इ-सुलेमान कहा और इसी प्रकार हजारों शहरोंके और स्थानोंके नाम बदल दिये। इसका रहस्य हम ऊपर बतला चुके हैं।

जब अंग्रेजों का राज हुआ तब उन्होंने धवलगिरीके गौरीशंकरका नाम मौंट एवरेस्ट रख दिया और सिमला, महाबलेश्वर आदि पर्वतराजोंके शिखरके अंग्रेजी नाम बना दिये। इसी प्रकार अन्य कई स्थानोंका अंग्रेजी-करण हुआ।

मुसलमानोंने मंदिरों और मूर्तियोंका विध्वंस किया और बलात्कारसे लोगोंको अपने धर्ममें मिलाया। अब ईसाई लोग धर्मांतर करा रहे हैं। वे प्राय: प्रत्येक देवस्थान और तीर्थस्थानमें खडे रहकर उसकी निंदा करते हैं। इसका भी कारण यही है जिससे कि हमारा अपने देशके स्थानोंका अभिमान नष्ट हो जाय।

जेते मुसलमान रहें, अंग्रेज रहें या जापानी रहें, उनका सबका स्वभाव एकहीसा होता है। जिन लोगोंके हृदयसे मातृभूमिकी भक्ति नष्ट करनेके लिए वे जो कुछ कर सकते हैं वह करनेमें चुकते नहीं। मातृभूमिके विषय में प्रेम और भक्ति उत्पन्न होनेके लिए अपने देशके तीर्थस्थानोंका प्रेमपूर्ण इतिहास जनताके हृदयमें सदैव जागृत रहना चाहिए। जबतक जनतामें मातृभूमिका प्रेम जागृत रहेगा, तबतक विदेशी जेताओंके पैर जम नहीं सकते। यही सार्वत्रिक नियम होनेसे सब जेते जीती हुई पादाक्रांत जनताकी मातृभूमिके प्रेमके सब चिह्न जलदी मिटानेका प्रयत्न करते हैं। संसारके इतिहाससे वाचक इसकी पुष्टिके उदाहरण स्पष्टतया देख सकते हैं। पुष्टि देखनेपर ही उन्हें ऊपरके मन्त्रके उपदेशका रहस्य विदित होगा।

यह तो स्वाभाविक ही है कि लोगोंको मालूम हो कि हमारे देशके नगर देवोंके बनाए हैं, हमारे पूर्वजोंका उनसे जो सम्बन्ध है उसका स्मरण रहे, बडे बडे महात्माओंके चरणरजका स्पर्श होनेसे वे स्थान तारक हो गये हैं। वेदमंत्रने ऊपरके राष्ट्रगीतके इन भावोंका खासा परिचय करा दिया है। अतएव पाठक इस मंत्र का जितना अधिक विचार करेंगे, उतनाही उनके लिए अच्छा होगा।

ऊपरके मन्त्रमें और दो बातें ध्यान देने योग्य हैं- (१) लोग अपने अपने क्षेत्रमें ध्यानसे काम करें। और (२) देशके निवासी को चारों दिशाएं रमणीय मालूम हों। अपने ही देशकी चारों दिशाएं हमको रमणीय नहीं मालूम होती, इसका कारण हमारी पराधीनता है। स्वतन्त्र लोगोंको सब दिशाएं रमणीय मालूम होती हैं। यह कहना कि 'सब दिशाएं हमें रमणीय दिखें' 'हम स्वतन्त्र रहें' कहनेके बराबर है। वर्तमान पराधीनता के ही कारण यदि हम पश्चिममें आफ्रिकामें, दक्षिणमें आस्ट्रेलियामें, पूर्वमें अमेरिकामें जाते हैं, तो हमें रहनेको भी स्थान नहीं मिलता! तब फिर वे देश हमारे लिए रमणीय कैसे हो सकते हैं? इसका कारण यही कि

हम पराधीन हैं। स्वतन्त्र देशके लोगोंका यह हाल नहीं है। स्वतन्त्र देश के लोग जहां जावेंगे, वहीं उनके लिए रमणीय स्थान तैयार रहते हैं। स्वातन्त्र्य और पारतंत्र्य का यह भेद ध्यानमें रखना चाहिए।

देशके नगरोंके प्रति अपनेपनका भाव मालूम होनेका महत्त्व जो ऊपरके मन्त्रमें बतलाया गया है, वह कैसे भारी महत्त्वका है, सो अपने देशकी जनस्थितिसे सहजही समझ सकते हैं। आज जो सात करोड भारतीय मुसलमान हैं, वे नब्बे प्रतिशत हिंदू ही हैं। परधर्मांतरके कारण वे हिंदुओंके बाहर हैं। इसीलिए बनारस, रामेश्वर आदि पवित्र तीर्थस्थानोंके प्रति उनमें अपनेपनका भाव नहीं है और विदेशके मक्का, मदीनासे उन्होंने नाता जोड लिया है। इससे उन्हें भारतदेश अपनी मातृभूमि नहीं मालूम होती। वाचक देख सकते हैं कि राष्ट्र की उन्नतिकी दृष्टिसे इस देशका कैसा भारी नुकसान हुआ है। धर्मांतरके बारेमें यदि प्राचीन आर्य हिंदुओंने अपनी नीति उचित रखी होती, तो आज यह दशा न होती। हमारी इस वर्तमान दशाको ध्यानमें रखकर उक्त मन्त्रपर विचार करना चाहिए, तब उस मन्त्रकी महत्ता और उसके अमोल उपदेशका रहस्य मालूम होगा।

ऋषि-ऋण।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

"जिस मातृभूमिमें पूर्वके ज्ञानी, देशका भूतकाल बनानेवाले ऋषियोंने सत्र और यज्ञ करके तथा तप करके सप्त (गाः) भूमियोंका उद्धार किया," वह हमारी श्रेष्ठ मातृभूमि है।

(भूतकृतः ऋषयः) हमारे देशका भूतकालका इतिहास बनानेवाले तपस्वी ऋषि थे। देशवासी यदि इस बात का विश्वास करें, तो उन्हें

प्राचीन कालके दिव्य समय का निश्चय होगा। पूर्वकालके दिव्यत्वका एवं उत्तमताका निश्चय हो जानेपर उन्हें इच्छा होगी कि भविष्यकाल भी ऐसा उज्ज्वल होवे और इस इच्छासे प्रयत्न भी करेंगे। जिनका भूतकाल तेजस्वी है, उनका भविष्यकालभी तेजस्वी होनेका निश्चय जानो।

हमारे प्राचीन पूर्वज जिन्होंने हमारे प्राचीन इतिहासमें बडे बडे बृहत् कार्य किये, अत्यंत तपस्वी और बडे थे। हमारा इतिहास जंगली लोगोंकी कार्यवाहीसे मलिन नहीं है, किंतु महान् तपस्वी ऋषिमुनियोंके प्रशस्ततम कार्योंसे उज्ज्वल हुआ है। यह विचार कैसी भारी उत्तेजना देनेवाला है? हमारी राष्ट्रभूमिके सब लोगोंका एक मत होकर वे सब राष्ट्रभूमिके प्रति प्रेम दर्शाने लगें, ऐसा होनेके लिए आवश्यक है कि, ऊपरकी भावना मनमें स्थिर हो जावे। हमारे विचारसे इसमें दो मत हो नहीं सकते।

जिन्होंने धर्मांतर किया, वे लोग भी अपने ही हैं। वे उन्हीं प्राचीन ऋषियोंके वंशज होते हुए भी धर्मांतरके कारण उन्हें अपने प्राचीन दैदीप्यमान इतिहासके विषय का अभिमान नष्ट हो गया। इससे इनकी बात छोड दें, तब ऊपरके सिद्धान्तका कोई इन्कार नहीं कर सकता।

ऊपरके विवेचनसे विदित होता है कि यह मातृभूमिका वैदिक राष्ट्रगीत कितनी अनेकानेक दृष्टिसे वाचकोंके मनमें अपनी मातृभूमिके प्रति आदर बढाता है। इस अति प्राचीन राष्ट्रगीतके प्रति वाचकोंके मनमें निःसन्देह आदर उत्पन्न होगा।

ऋषिलोग सत्र और यज्ञसे राष्ट्रकी उन्नति और राष्ट्रकी जागृति करते थे। वर्तमान संक्षिप्त यज्ञपद्धतिसे कोई भी प्राचीन सत्र और यज्ञ की कल्पना नहीं कर सकता। वे आजकलके समान छोटेसे मण्डपोंमें नहीं हो सकते थे। उनके मण्डपोंका विस्तार कई कोसों तक रहा करता था। यह एकही

बात बतला देगी कि प्राचीन कालके यज्ञोंका स्वरूप बिलकुल भिन्न था। राष्ट्रीयताका विचार ऋषियोंके अथक परिश्रमसे जनतामें जारी हुआ। इसीलिए ऊपरके मन्त्रोंमें "भूतकाल बनानेवाले ऋषि" कहकर उनका सन्मान किया है। इसीके सम्बन्ध का निम्नलिखित अथर्ववेदका मन्त्र देखिए—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥

(अथर्ववेद १९।४१।१)

'लोगोंका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषियोंने प्रारंभ में तप किया, उससे राष्ट्र बल और ओज हुआ। अतएव देवोंको चाहिए इसे नमन करें।'

इसमें बतलाया है कि राष्ट्रीयताकी कल्पना ऋषियोंके प्रयत्नसे कैसे उत्पन्न हुई। वाचक देख लें कि ऋषि 'भूतकाल बनानेवाले' किस प्रकार थे। राष्ट्रीय भाव ऋषिऋण है। उसे चुकानेका प्रयत्न हरएकको करना चाहिए। ऋषियोंने राष्ट्रनिर्माणमें जैसे प्रयत्न किये वैसे ही अन्य पूर्वजोंने भी किये। उसका स्मरण करना भी आवश्यक है। आगेके मन्त्रमें उन पूर्वजोंका स्मरण है—

देव—ऋण।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥५॥

"हमारी जिस मातृभूमिमें हमारे प्राचीन पूर्वजोंने पराक्रम किया और जिसमें देवोंने असुरोंको भगा दिया; जो गौवें, घोडे और पक्षियोंको अच्छा स्थान देती है, वह हमारी मातृभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज देवे।"

हमारे प्राचीन कालके पूर्वजोंने इस भूमिमें बडे बडे प्रयत्न किये, अनेक लडाइयां कीं, अनेक चढाइयां कीं, गनीमी नीतिके युद्ध किये और खुले मैदानमें लडाइयां कीं, इतना सब काम करके अपनी मातृभूमि का यश उज्ज्वल किया। वह हमारी मातृभूमि आज हमने कैसी रखी है ? हमारे पूर्वजों का प्राचीन इतिहास हमारी दृष्टिके सामने है। क्या हम लोगोंका बर्ताव उस इतिहासके योग्य है ? उन समरविजयी पूर्वजोंके वंशज होनेका हमें कुछ भी तो अभिमान चाहिए। उनकी कीर्तिको शोभा देने योग्य हमें कुछ भी तो काम करना चाहिए। पाठकगण ! विचार करिये। हमारा वैदिक राष्ट्रगीत क्या कहता है जरा देखिए तो सही।

जिस देशमें प्राचीन समय में देवोंने असुरोंको युद्ध में पराजित कर भगा दिया और हम लोगोंके लिए यह देश स्वतन्त्र रखा, उसी देशमें हम लोगोंने पराधीनता की कालिमा लगा दी! कैसे शोक की कथा!! वाचक ही विचार करें कि राष्ट्रगीत हमें किन बातों का स्मरण दिलाता है। प्राचीन पूर्वजोंने यों किया और त्यों किया। ये बातें केवल रूखे अभिमान और गर्व के लिये नहीं कही जाती। उनके कहने का उद्देश्य यह होता है कि उन पूर्वजोंके उज्ज्वल कार्योंसे हमें स्फूर्ति मिले और हम भी कुछ वैसा ही कार्य करें। हम लोगोंको चाहिये कि उस उद्देश्य की पूर्ति हम लोगोंसे कहां तक हो सकी है यह देखें और उस न्यूनताको पूरा करनेका निश्चय करें।

हमारा यह वैदिक राष्ट्रगीत हमारे धर्मग्रंथोंमें लिखा हुआ है। इसके जैसा राष्ट्रगीत दूसरे देशोंके धर्मग्रंथो में तो है ही नहीं, पर उन लोगों के अन्य किसी ग्रंथ में भी नहीं है। ऐसा होते हुए भी हमारे देशके लोग राष्ट्रकी उन्नति के विषयमें लापरवाह हैं और अन्य बहुतसे देशों के लोग राष्ट्रके हितके लिये तत्पर हैं। इस दशा को देखकर कैसा भारी आश्चर्य होता है!! हमारा राष्ट्रगीत इतना विस्तृत है। उसमें उदात्त विचारों के,

अप्रतिम विचारोंसे लबालब भरे हुए दिव्य मन्त्र हैं। ऐसा होते हुए भी हमारे साहित्य में राष्ट्रीयता का भाव ही नहीं और यह भाव हमारे लिये परकीय है, इस प्रकार की समझ रखनेवाले हरी के लाल हममें हैं। अस्तु। वस्तुस्थिति जैसी है वैसी हमने जनता के सन्मुख रख दी है। "जहां पजता है वहां बिकता नहीं और जहां बिकता है वहां पजता नहीं" की कहावत यहां चरितार्थ होती है। और देखिये—

> यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
> इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ॥
> सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

"जिस भूमि की नाप अश्विनी कुमारोंने की, जिस भूमि में भगवान् विष्णुने पराक्रम किया, शक्तिशाली इन्द्रने जिसे अपने लिये शत्रुरहित किया, वही हमारी मातृभूमि, जैसे माता अपने बालकको दूध देती है वैसे ही, मुझे उपभोग के पदार्थ देवे।"

इस मंत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें बतलाया है कि देवोंने इस मातृभूमि के लिए क्या क्या किया। अश्विनीकुमारों ने देशदेशांतरों के क्षेत्रोंकी नाप की, देशोंकी सीमाएं निश्चित कीं, जमीन नाप ली और इस प्रकार मातृभूमिकी सेवा की। भगवान् विष्णुने जो पराक्रम किये वे सबको विदित ही हैं। इन्द्रने हजारों युद्ध किये और इस मातृभूमिको शत्रु के कष्टों से छुडाया। इस प्रकार अन्यान्य देवताओंने भी इस मातृभूमि के लिए जो कुछ बन सकता है किया। उसमें कुछ कसर न रखी। देव और असुरों के युद्ध में हजारों देववीरोंने इस मातृभूमिके उद्धार के लिये युद्धक्षेत्रमें अपना बलिदान किया और इस भूमिको स्वतन्त्रता का सौभाग्य प्रदान किया। वही देवोंका व्रत हमें भी चलाना चाहिए। देवोंने निश्चित किए हुए मार्गका ही निश्चय हम लोग भी करें। यह जानकर कि हम लोगोंके लिये देवोंने तथा

उस समय के पुरुषोंने क्या क्या किया, हमें उनके ऋणसे छुटकारा पानेका प्रयत्न करना चाहिये।

ऋषिऋण कौनसा है सो बतला दिया गया; देवऋण कौनसा है सो भी बतला दिया गया। इन ऋणोंसे मुक्त होने के लिए हमें प्रयत्नशील बनना चाहिए। प्रत्येक को सोचना चाहिए कि हम ऋणमुक्त होनेकी चेष्टा कर रहे हैं या नहीं। इस देवऋण के बारेमें एक और मंत्र देखने योग्य है---

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधुप्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

"देव जिस मातृभूमिकी रक्षा गलती न करके और आलस न करके करते आये हैं, वह मातृभूमि हम लोगोंको तेज और मीठा शहद आदि खाने के पदार्थ देवे।"

(अ-स्वप्नाः देवाः) आलस न करते हुए देव इस भूमिकी रक्षा करते आए हैं। आलस न कर सदैव काम करनेवाले उन देवों के सन्मुख खडे होनेमें आलसी लोगोंको शरम आनी चाहिये। न थकते हुए, विश्रांति न लेते हुए, हम लोगों के लिये जिन देवोंने ऐसे भारी परिश्रम किए, उनके उस पवित्र कार्य के बदलेमें हम लोगोंने क्या किया? उनका स्वातन्त्र्यरक्षा का कार्य क्या हम लोगोंने चलाया है? और कुछ नहीं तो क्या हम लोगोंने राष्ट्रोन्नति का कार्य सदैव जारी रखनेका भी निश्चय किया है? वाचक न भूलें कि इन बातोंपर विचार करनेका समय आ गया है।

ऊपरके मंत्रमें यह भी कहा है कि (देवाः अप्रमादं रक्षन्ति) देव गलती न करके रक्षा करते हैं। गलती न करके रक्षण किया इसीसे तो देव बंधनसे छुटकारा पा सके। असुरोंने अनेक बार देवोंको चिरकालकी पराधीनताकी बेडीमें जकड देना चाहा। रावण, बली और इनके सदृश अन्य राक्षसोंने इस प्रयत्नमें कुछ भी कसर नहीं रखी। किंतु ऐसे सब

अवसरोंपर देवोंने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा की, अपनी स्वाधीनता बनाए रखी और असुरोंको भगा दिया। गलती न कर दक्षतासे कर्तव्य करनेकी जो दीक्षा देवोंने हमें दी, क्या हमें उसका अभ्यास सावधानीसे न करना चाहिये ? स्वदेश के कार्यमें हम लोगोंकी दक्षता क्या वैसी है, जैसी होनी चाहिए ? हम लोक निरे हठके कारण पग पग पर क्या भारी भूलें नहीं कर रहे ? वास्तवमें राष्ट्रकार्य के लिए आत्मसमर्पण करनेको हमें सदैव तैयार रहना चाहिये। किन्तु आत्मसमर्पण का समय आनेपर उसकी ओर ध्यान न देनेवाले कितने ही लोग हममें हैं। यदि वाचक स्वयं ही इस बातको सोचेंगे तो उन्हें विदित हो जावेगा कि हमें क्या करनेकी आवश्यकता है।

विद्वानोंका ऋण।

ऋषियों का राष्ट्रकार्य हम देख चुके। देवोंने क्या किया सो भी देख लिया। हमें अब देखना है कि जो ऋषि नहीं उन मननशील बुद्धिमान् पुरुषोंने कौनसा कार्य करके राष्ट्र की सेवा की—

याऽर्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८॥

"हमारी जो मातृभूमि प्रथमारंभमें समुद्रके नीचे थी और जिसकी सेवा मननशील विद्वानोंने अनेक प्रकारके कौशल के काम करके की, वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्रमें तेज और बल धारण करे।"

इस मन्त्रका 'यां मायाभिः अन्वचरन् मनीषिणः' यह भाग प्रस्तुत लेखके प्रतिपाद्य विषय की दृष्टिसे अतिशय महत्त्व रखता है। इसका 'माया' शब्द अतीव महत्त्वका है। इस माया शब्दका अर्थ अद्वैतमतका मायावाद नहीं है। माया शब्दके कई अर्थ हैं– "(१) कुशलता, कामकी

कुशलता, कौशलसे किया हुआ कारीगरीका काम, चातुर्य, (२) कपट, दांवपेंच जिनकी आवश्यकता राजनीतिमें है, शत्रुको चकमा देनेकी विद्या।" ये सब अर्थ माया शब्दके ही हैं। इन दोनों अर्थोंसे माया शब्द मन्त्रमें आया है। (मनीषी) मननशील लोग समयको देखकर कुशलतासे, चतुराईसे, कपटसे, वा राजनीतिके नियमोंसे मातृभूमि की सेवा करते हैं। यही इस मन्त्रका आशय है।

इस प्रकार देव, ऋषि, और अन्य विद्वानोंने हमारी मातृभूमिकी सेवा की है। जो मार्ग ऋषि, देव और अन्य बडे बडे ज्ञानी लोगोंने दिखा दिया, उसीसे हमें आक्रमण करना चाहिए, उसी रास्तेसे हमें जाना चाहिए। तभी हमारी भलाई होगी। हम पर तीन ऋण हैं; ऋषि-ऋण, देव-ऋण और अन्य ज्ञानियोंका ऋण। हमें इन ऋणोंको देखना चाहिए और उनसे मुक्त होनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

इस लेखके वैदिक राष्ट्रगीतके मन्त्र हमारे राष्ट्रीय कर्तव्योंका सम्बन्ध ऋषि-कालकी बडी विभूतियोंसे भिडाते हैं। हमारा अखण्ड राष्ट्रीय कर्तव्य ऋषियोंने आरंभ किया, देवोंने उसकी पुष्टि की और अन्य विद्वानोंने उसे बढाया। इस त्रिवेणीसंगममेंसे वह हमारे पास आया है। इसीसे हमें उसे आगे चलाना चाहिए। उसे चलाना हमारा आवश्यक कर्तव्य ही है। यदि हम उस कार्य को नहीं चलाते, तो ऋषि और देव हमें जवाब पूछेंगे। हरएकको यह बात अच्छी तरह स्मरण रखनी चाहिए।

वाचक विचार करें, इस मन्त्र के उपदेशपर अच्छी तरह ध्यान दें और देखें कि हमारा धर्म कैसे विलक्षण और उच्च राष्ट्रीय धर्मका उपदेश करता है; और वे उसके अनुसार आचरणके लिए तत्पर हों। हमारे राष्ट्रको संसारके राष्ट्रोंमें उच्चसे उच्च स्थानपर पहुंचानेकी जवाबदेही हमपर ही है। उसे निभानेके लिए हमें सदैव तैयार रहना चाहिये।

मंत्रोंकी संगति।

यहां इस विवरण को समाप्त करते हुए हमें इस सूक्तके मन्त्रोंकी संगति देखनेका विषय थोडासा कथन करना चाहिये। इस सूक्तमें कुल ६३ मंत्र हैं। इनमें सबसे प्रथमके मन्त्रमें मातृभूमिकी धारणा किन गुणोंसे होती है, यह बात कही है, इसलिये यह मन्त्र सबसे अधिक महत्त्वका है। प्रत्येक राष्ट्रभक्तको उचित है कि वह इस मन्त्रको देखे, विचारे, मनन करे और इन गुणोंको अपने अन्दर बढाकर अपने आपको मातृभूमिकी सेवा करनेके लिये सुयोग्य बनावें।

द्वितीय मन्त्रमें राष्ट्र के लोगोंके अन्दर आपसकी अभेद्य एकता चाहिए, तथा आपसी झगडे नहीं चाहिये, इत्यादि जो महत्त्वपूर्ण उपदेश कहा है, वह सदा स्मरण करनेयोग्य है। तृतीय और चतुर्थ मन्त्रमें सामान्यतया भूवर्णन है, परन्तु उनमें (कृष्टयः संबभूवुः) किसानोंकी संघटनाका जो वर्णन है, वह सनातन महत्त्वका विषय है।

पंचम मन्त्रमें पूर्वजोंके पराक्रमों (पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे) का स्मरण करनेकी जो सूचना मिली है, वह आबालवृद्धोंको कभी भूलना योग्य नहीं। जो अपने पूर्वजोंका महत्त्वपूर्ण इतिहास नहीं जानते, वे निःसंदेह आगे बढ नहीं सकते। इस कारण यहां यह उपदेश किया है। सातवें मंत्रमें भी (अस्वप्ना भूमिं अप्रमादं रक्षन्ति) आलस्यरहित होकर मातृभूमिकी रक्षा करनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश है। इसका पंचम मन्त्रके साथ सम्बन्ध देखकर पाठक बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

मंत्र ६ और ७ में मातृभूमिका मनोरम वर्णन है। नवम मंत्रमें उदारचरित संन्यासीयोंके संचारसे सर्वत्र ज्ञानप्रसार होकर सब प्रजाजनोंके अन्तःकरण ज्ञानविज्ञानके द्वारा शान्तिसे भरपूर होनेका बोधप्रद वर्णन है। दशम मंत्रमें इन्द्र और विष्णुके पराक्रमोंका जो कथन है, वह ५ वें

और ७ वें मंत्रके साथ मिलाकर पढना चाहिये, तब उसकी संपूर्ण गंभीरता ध्यानमें आ सकती है। ११ वें मंत्रमें (अजीतो अहं पृथिवीं अध्यष्ठां) 'मैं अजिंक्य होकर मातृभूमिका अधिष्ठाता बनूंगा,' यह उत्कर्षपूर्ण महत्त्वाकांक्षा राष्ट्रके प्रत्येक मनुष्यमें उत्पन्न होनी चाहिये, ऐसा जो सूचित किया है, वह विशेष ही उत्तम संदेश है।

१२ वें मंत्रमें 'माता, भूमि और उसका मैं पुत्र हूं' यह मातृप्रीति और वत्सका प्रेम सूचित करनेवाला वाक्य पढकर प्रत्येक पाठक प्रेमसे सद्गदित होंगे, इसमें संदेह नहीं है। १३ वें मंत्रमें यज्ञका संदेश पाठक देखें। १४ वें मंत्रमें वीरोचित भाषा बडी क्षात्रतेज बढानेवाली है। 'जो हमारा नाश करेगा, उसका नाश हम करेंगे और आगे बढेंगे' इसे पढकर किसमें वीरता न बढेगी ? १५ वें मंत्रमें एकही माता से उत्पन्न हुए पांच मानवजातियोंकी अभेद्य एकताका सुंदर वर्णन है। १६ से १८ तकके मंत्रोंमें (भूमिं विश्वहा अनुचरेम) 'हम मातृभूमिकी प्रतिदित सेवा करेंगे,' यह प्रतिज्ञा सबको अपने मनमें धारण करनेयोग्य है। क्या कभी ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले मातृभूमिकी उपेक्षा करेंगे ?

१९वें मंत्रसे ३१ वें मंत्रतक मातृभूमिका सुंदर वर्णन अलंकारोंसे भरपूर भरा हुआ है। अग्नि, यज्ञमें हवन, पृथ्वीका गन्धगुण, वनस्पतियोंकी उत्तमता, जलकी महत्ता आदि वर्णन देखनेसे सचमुच हृदयका आनंद बढता है। मंत्र ३२ वें में (परिपंथिनो वधं) बटमारोंका वध आदि द्वारा शासन करनेकी सूचना है। मंत्र ३३ वें में सूर्यप्रकाशसे नेत्रादि इंद्रियोंकी उत्तम पालना करनेका महत्त्वपूर्ण संदेश दिया है। ३४ वें मंत्रमें 'अहिंसा' और ३५ वें मंत्रमें मर्मच्छेदन न करनेका उपदेश विलक्षण युक्तिके साथ दिया है।

३६ वें मंत्रमें छः ऋतुओं, दो अयनों और अहोरात्रका उल्लेख संवत्सरचक्रकी परिपूर्ण कल्पना बता रहा है। ३७ वें मंत्रमें इन्द्रवृत्रयुद्धके मिषसे

अपनी मातृभूमिके सब शत्रुओंके दूर करनेकी सूचना बडी मननीय है। ३८ वें मंत्रमें सोमयज्ञका बडाही मनोरंजक वर्णन है। सत्र और यज्ञ संस्थाके चलानेवाले ऋषियोंके अपूर्व सत्कर्ममार्गका प्रशंसापूर्ण उल्लेख ३९ वें मंत्रमें है।

४० वें और ४४ वें मंत्रमें धनकी कामना प्रमुख स्थान रखती है। ४१ वें मंत्रमें जनताका गायन, नर्तन और आनन्दके साथ नगरकीर्तनका उल्लेख है। यह राष्ट्रीय जीवनकी तेजस्विता बता रहा है। ४२ वें मंत्रमें मातृभूमिको नमन किया है।

४३ वें मंत्रमें अपने राष्ट्रमें देवोंद्वारा बनाये, बसाये और बढाये नगरोंके विषयमें पूज्य भाव धारण करनेका उपदेश है। अपने लिये जगत्‌की सब दिशाएं रमणीय होनेका महत्त्वपूर्ण भाव इसीमें पाठक मननपूर्वक देख सकते हैं।

४५ वां मंत्र 'नानाधर्मोंवाले और नाना भाषावाले विविध जनोंकी एकता राष्ट्रभक्तिसे होगी,' यह महत्त्वपूर्ण उपदेश देता है, इसलिये यह मंत्र अनेक भेदोंसे विभक्त रहनेवाले और कारणके विना आपसी झगडे बढानेवाले लोगोंको बडाही बोधप्रद है। ४६ वें मंत्रमें जहरीले जीवोंके भाव मानवोंमें न आवे, ऐसा कहकर सद्भाव बढानेका उपदेश अपूर्व रीति से किया है।

४७ वें मन्त्रमें सार्वजनिक स्थानपर सबका समान अधिकार होने की घोषणा की है। दुराचारी और सदाचारी मार्गपर समान अधिकारसे चलते हैं। इस सार्वजनिक स्थानमें हरएक मनुष्य जा सकता है। यहां एकको आज्ञा और दूसरेको प्रतिबन्ध नहीं हो सकता।

मातृभूमि को पापी और सदाचारी पुत्ररूपेण समान है, यह भाव मंत्र ४८ में देखनेयोग्य है। ४९ से ५१ के तीन मंत्रोंमें पशुओं, पिशाचादिकों और पक्षियोंका वर्णन है। मंत्र ५२ और ५३ में प्रिय धाम और मेधा की प्राप्तिका कथन है।

५४ वें मंत्रमें अपने दिग्विजयकी महत्त्वाकांक्षा है। ५५ वें मंत्रमें चारों दिशाओंमें उत्कर्ष फैलानेका संदेश है। ५६ वें और ५८ वें मंत्रोंमें सार्वजनिक सभाओंमें मातृभूमिके विषयमें शुभ भावसे भाषण करनेका उपदेश है। ५७ वें मन्त्रमें सेनाकी तैयारीका वर्णन है। मंत्र ५९ से ६१ तक सर्वसाधारण उपदेश है। ६२ वें मन्त्र में मातृभूमिके हितके लिये आत्मसमर्पण करने का आदेश है और ६३ वें मन्त्र में सब प्रजाओंकी सुप्रतिष्ठा स्थिर करने का संदेश देकर सूक्तकी पूर्णता की है।

पाठक यह संगति देखकर इस सूक्त का मनन करें और बोध प्राप्त करके यशके भागी बनें।



वेदमें युद्ध का आदेश।

वेद को अभीष्ट तो 'सर्वत्र मित्रदृष्टि' ही है, अतः 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे (यजुर्वेद)' ऐसा वेदने असंदिग्ध रीतिसे कहा है। 'सर्वत्र शांति और सर्वत्र मित्रदृष्टि' ही वेद के धर्मका आदर्श वैदिक धर्मियों के सन्मुख सदा से रहा है, तथापि आततायीयोंके साथ जब युद्ध अनिवार्य हो जाता है, तब आपत्कालधर्मानुसार युद्ध करनेके आदेश भी वेद बार-बार देता है। अर्थात् ये युद्ध, असुरराक्षसोंके उपद्रव होनेके बाद, देवों और आर्यों को असुरों का उपद्रव हटाने के लिये करने आवश्यक होते हैं। ऐसे युद्ध वेदोंमें अनेक स्थानोंमें कहे हैं। अर्थात् ऐसे युद्धोंके आदेश वेदमें हैं। वेदमें जितने भी युद्ध हैं, वे सबके सब दुष्टों के शमनार्थ हैं, न कि आर्यों या देवों द्वारा विना कारण दूसरोंपर हमला करके स्वयं उपस्थित किये हैं। इस दृष्टिसे वेदका अभ्यास बडा ही बोधप्रद है।

शांति और स्वस्ति का उपदेश करना ही वेदका कार्य है, परन्तु वह करता हुआ, आवश्यक होनेपर वेद युद्धों के आदेश भी देता है। वेद-पाठ करते करते शांतिपाठ के साथ वेद युद्धों का भी आदेश देता है, यह बात सुस्पष्ट हो जाती है।

पुराणों को देखनेसे स्पष्टता के साथ पता लगता है कि, सब को निर्भयता की शिक्षा देनेवाले ऋषिलोग अपने गुरुकुलों में बैठते हुए और ब्रह्मचारियों को वेदका पाठ देते हुए, युद्ध की शिक्षा भी साथ साथ देते थे। आंगिरसों के गुरुकुल में तो कई शस्त्र और अस्त्र बनाये जाते थे, इस विद्याके लिये आंगिरसों के गुरुकुल की प्रसिद्धि है। धनुर्विद्या की जितनी उन्नति इन ऋषियों के गुरुकुलोंमें हुई थी, उतनी बाहर नहीं हुई थी। नरनारायण ऋषियों का आश्रम बद्रिकेदार के क्षेत्रमें था। ये दोनों ऋषि तप करते थे, कभी इन्होंने किसीपर हमला नहीं किया और ना ही किसी को उपद्रव दिया। पर उन्मत्त क्षत्रियोंने जब इस आश्रमपर हमला किया, और आश्रम की लूट करने की इच्छा प्रकट की, तब ये ही तपस्वी युद्ध के लिये सिद्ध हुए और ऐसा अस्त्र शत्रुपर फेंका कि, जिसका वायु शत्रुसैनिकों के मुखों और नाकों-आखोंमें जाकर वे जान लेकर भागने लगे, वहां ठहर न सके। ऐसे ऐसे अस्त्र ऋषियों की खोज से प्रयोग में आ गये हैं।

अनेक गुरुकुलोंमें धनुर्वेद पढाया जाता था, और ब्राह्मणहि धनुर्वेद को पढाते थे। ब्राह्मण स्वयं युद्ध करनेके इच्छुक तो कभी नहीं थे, परन्तु शत्रु का प्रतिकार करनेके लिये वे अपने पास ऐसा साधन अवश्य रखते थे, इस में कोई संदेह नहीं है।

स्त्रियों की सेना।

वेद पढनेसे ऐसा मालूम पडता है कि, वैदिक समय की शिक्षामें सब बालकों को, स्त्रियों और पुरुषों को, कुछ न कुछ युद्ध की शिक्षा भी आवश्यक रूपसे दी जाती थी। वेदमें स्त्रियों की सेना का उल्लेख है, देखिये-

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोपप्रैद् युधये दस्युमिन्द्रः॥
(ऋ० ५।३०।९)

"नमुचि नामक दास-असुर-राजाने स्त्रियों को आयुधों अर्थात् शस्त्रास्त्रों से युक्त किया है, स्त्रियोंकी सेनाएं बनायी हैं। इस शत्रु की ये निर्बल सेनायें, भला, मेरा क्या करेंगी? ऐसा कहकर इन्द्रने दोनों शब्द सुने और पहचाने, और बाद शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये इन्द्र आगे बढा।"

यहां दस्यु राजाने स्त्रियों की सेना तैयार की थी, ऐसा स्पष्ट है. स्त्रियों को शस्त्रास्त्र देकर युद्ध के लिये तैयार किया था। अतः इन्द्र कहता है कि, ये अबलाओं की सेनाएं मेरा क्या करेंगी? ऐसा कहकर इन्द्रने शत्रु कहां है और उसकी सेना कहां रही है, यह उनके शब्द से पहचाना और स्त्रियोंकी सेना को छोडकर नमुचिनामक राक्षस पर हमला चढाने के लिये इन्द्र दौडा। यह वर्णन बडा बोधप्रद है।

ये स्त्रियों की सेनाएं असुरोंने तैयार की थीं, आर्यों का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। तथापि समय पर असुर राष्ट्रोंमें स्त्रियां भी युद्ध के लिये तैयार रहती थीं, यह बात इससे स्पष्ट दीखती है। आर्योंमें भी स्त्रियों के युद्ध करने का उल्लेख वेदमें है। इस विषयके मन्त्र वेदमें जो हैं, वे अब देखिये—

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं। (ऋ० १।११२।१०)
सं विश्पलां नासत्यारिणीतं। (ऋ० १।११७।११)
प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तं। (ऋ० १।११८।८)
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायां।
सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥
(ऋ० १।११६।१५)

विश्पलावसू (अश्विनौ) (ऋ० १।११८।१)
सद्यो विश्पलामेतवे कृथः॥ (ऋ० १०।३९।८)

"अथर्व-अनुयायी कुलमें उत्पन्न विश्पलानामक वीर स्त्रीकी रक्षा आपने जिन संरक्षक साधनों के द्वारा की। विश्पलानामक स्त्रीको आपने ठीक तरह दुरुस्त किया। इस विश्पला को आपने नई जांघ बनाकर लगाई। जब खेल राजाकी शूर स्त्री युद्ध करती थी, उसकी जांघ युद्धमें कट गई, तब रात्रीमेंहि तत्काल आपने उसको लोहे की जांघ लगा दी, और चलने-फिरने और युद्ध करने के योग्य बना दिया। विश्पला के सहाय्यक आप हैं। विश्पलाको आपने शीघ्र ही चलनेफिरनेयोग्य बनाया।"

इन मन्त्रभागों में वैद्यकीय शस्त्रक्रिया की परम उन्नति का वर्णन है—

(१) पहिली टांग टूटनेपर नयी लोहे की टांग लगाना और चलने-फिरनेयोग्य उस मनुष्य को करना।

(२) युद्धमें गये वीरकी टांग टूटनेपर उसको तत्काल दुरुस्त करना, नयी लोहे की टांग लगा देना, और फिर वह युद्ध कर सके, ऐसा करना।

(३) शस्त्रक्रिया का इतना भारी आपरेशन करना और उस व्रण को शीघ्र दुरुस्त करके उसको काम लेने योग्य बनाना।

इतनी बातें तो उक्त वेदमंत्रों में स्पष्ट हैं, और ये शस्त्रक्रिया का बडा कौशल्य बताती हैं। इसके अलावा उक्त वेदमंत्रोंमें जो वीर स्त्री है, वह एक राजपत्नी, वीरपत्नी और वीरपुत्री है। खेल राजा की यह स्त्री है। राजा की स्त्री उस समय युद्धमें जाती है, कि जिस समय राजाके सब सैनिक हार कर वापस आते हैं, राजा का पराभव होता है और राजाकी हार होनेमें कोई सन्देह नहीं रहता।

ऐसी अवस्था में राजकन्या और राजपुत्री अपनी सेना लेकर युद्ध के लिये जाती है, शत्रुसेनापर हमला करती है और उस दिन शत्रु का बल

अधिक होनेपर शिकस्त खाकर टांग टूटनेपर वापस आती है। अपनी टांग टूटने तक युद्ध करती है। वापस आनेपर उस वीर स्त्रीपर वहांके डाक्टर लोग (अश्विनीकुमार) शस्त्रक्रिया—आपरेशन—करते हैं. टांग टूटनेका व्रण ठीक करते हैं और लोहे की नयी टांग चलनेफिरने के लिये लगा देते हैं। यह सब ऐसी युक्तिसे और कुशलतासे करते हैं कि, वही स्त्री फिर युद्धमें जाती है और विजय प्राप्त करती है, शत्रु का पूर्ण नाश करती है और यशस्विनी बन कर अपने राष्ट्र का स्वातन्त्र्य सुरक्षित करती है।

आजकल टांग का आपरेशन करनेपर एक—दो मास उस व्रण को ठीक होनेके लिये लगते हैं. लोहे की टांग लगाई, तो उसको वर्तने का अभ्यास करनेके लिये भी एक-दो मास अवश्य लगते हैं, पर ऊपरवाले मन्त्रोंमें (सद्यः) यह सब तत्कालहि हुआ, ऐसा दिखलाया है। यहां हम मान सकते हैं कि, आवश्यक दिन लगे होंगे, अथवा उनके पास कुछ ऐसी औषधियां होंगी, कि जिनसे आज की अपेक्षा बहुत शीघ्र व्रण दुरुस्त होता होगा।

महाभारत के युद्धमें हम देखते हैं कि, वेही योद्धा प्रतिदिन जखमी होते हैं और दूसरे दिन फिर युद्ध करनेके लिये तैयार भी होते हैं। इससे अनुमान होता है कि, जब वे रातको वापस आते थे, तब कुछ वनस्पतिका लेप लगाते थे, और कुछ औषधि खाते भी थे, जिससे दूसरे दिन फिर युद्ध के लिये तैयार हो जाते थे। वही बात विश्पलादेवी के सम्बन्धमें सत्य होगी। अस्तु।

खेल की खोज।

मनु का वचन है कि, वेद के शब्दों का प्रयोग देश देश के लोगोंने किया। मनुष्यों के नाम, देश के नाम, स्थानों के नाम [वेदशब्देभ्य एवादौ (मनु०)] वेदके शब्दों को लेकर मानवोंने किये। यदि यह मनु का वचन सच है, तो प्रतीत ऐसा होता कि, फ्रंटियर के सीमाप्रान्त के,

लोगोंने इस 'खेल' शब्दका प्रयोग अपने लिये किया था। क्योंकि यह 'खेल' शब्दका प्रयोग आजकल भी भारत और अफगानिस्थानके बीचके प्रदेशोंमें चालू है। 'ञाका खेल, ईसा खेल' ये नाम वहां आज भी प्रचलित हैं। प्राचीन समयमें ये ही शब्द 'ज्या खेल, ईश खेल' ऐसे होंगे। परन्तु यह वैदिक 'खेल' शब्द पठानों के देशोंमें इस समयमें भी मिलता है, यह सत्य है।

किसी खोज करनेवाले को उचित है कि, इस प्रान्तमें और कौनकौनसे वैदिक शब्द प्रचलित हैं, इस की खोज करें और देखें कि, इसका परिणाम क्या होता है। आजकल का 'खान' शब्द भी 'कृष्ण' शब्द का रूपान्तर दीखता है, यह बात यहां कहनेमें हमें कोई संकोच नहीं होता। 'कृष्ण, करसन, करहन, कहंन, कहान, खान,' इस तरह स का ह बनकर खान बनता है। आजकल खानचंद, कहानचंद ये नाम पंजाब में प्रचलित हैं, ये कृष्णचन्द्र के ही अपभ्रंश हैं। इस तरह अफगानिस्थान तो 'अहि-गण-स्थान' निःसंदेह है। अहि जातिका उल्लेख वेदमें अनेक वार आता है। अहि नामक लोकों की जनता जहां रहती थी, वह अहिगणस्थान है, वही आज अफगानिस्थान कहाता है।

पूनामें एक महाशयने संपूर्ण भूमि के ऊपर के आजकलके नगरों, ग्रामों, नादियों, पर्वतों के नामों के संस्कृत नाम कौनसे हैं, इसका एक बडा भारी कोश तैयार किया है। इससे न केवल अफगानिस्थानमें परन्तु नार्वे स्वीदन में भी शहरों के नाम संस्कृत होने में संदेह नहीं रहता। इनमें सैकडो शब्द वैदिक हैं। इस से मनु का उक्त वचन सिद्ध हो रहा है। अस्तु। जब यह कोश छपेगा, तब इस का अधिक वर्णन हम पाठकों के सन्मुख रखेंगे।

आज इस लेख में युद्ध में स्त्रियों के भाग लेनेका विषय चल रहा है। और ऊपर के मन्त्रोंने यह स्पष्ट रीतिसे दर्शाया है कि, विश्पला देवी की शूरता वर्णन करनेयोग्य है। पर शोक की बात यह है कि, कुमारिकाएं

यूरप का 'जोन आफ आर्क' का नाम जानती हैं, परन्तु वेदकी 'विश्पला' को नहीं जानती। विश्पलाने टांग कट जानेपर भी भारी युद्ध किया और विजय पाया। ऐसा शौर्य किसी देशकी किसी कुमारिकाने नहीं दर्शाया। अतः आर्यस्त्रियों को विश्पला का स्मरण करना योग्य है।

वैदिक धर्म में रहनेवाले कुमार-कुमारिकाओं को, जिनको कि उपनयन करने का अधिकार है, युद्ध की शिक्षा आवश्यक शिक्षा करके दी जाती थी। मानो उपनयनसंस्कार ही 'आर्य-स्वयंसेवक-संघ' में प्रविष्ट होनेका संस्कार है।

१. मेखलाबंधन (कमरपट्टा बांधना)
२. दण्डधारण (लाठी का चलाना)
३. कुठारप्रयोग (समिधा तोडने के लिए कुल्हाड चलाना)

ये शिक्षाएं आवश्यक शिक्षा थीं। ये तीनों शिक्षाएं स्वयंसेवकसंघ के लिये बालवीर-सेना के लिये उपयोगी हैं। स्वयं अपनी रक्षा करना और शत्रुपर हमला करना, ये दोनों कार्य इससें सिद्ध होते थे। जो लाठी ब्रह्मचारी के हाथमें दी जाती थी, वही संन्यासी के हाथ में दण्डरूप से रहती थी, इसलिये संन्यासी का नाम 'दण्डी' भी है। जो दण्ड धारण करता है, वह दण्डी है।

जो कुठार ब्रह्मचारीके हाथ में समिधा तोडने के निमित्त दी जाती थी, वही आगे 'स्फ्य' नाम से वैदिक यज्ञों में शस्त्रधारणमें परिणत होती थी। स्फ्य आजकल का शिखों का कृपाण नामक शस्त्र ही है, जो उनके पास सदैव रहता है। वही आर्यों की वैदिक प्रथा थी।

कश्यप ऋषिका पुत्र 'गणेश' था, उसका उपनयन उसी ऋषिके आश्रम में हुआ और उपनयनमें उसको अनेकोंने अनेक शस्त्रास्त्र दिये थे। उपनयन में शस्त्रास्त्र दिये जाते थे, और उनका प्रयोग सिखाया जाता था, इसका

प्रमाण कश्यपपुत्र के उपनयन से मिलता है। यह कथा गणेशपुराण में देखनेयोग्य है।

इस तरह उपनयन के समय बालवीरसेनामें प्रवेश होता था, और वह शिक्षा आगे गुरुकुलों में न्यून वा अधिक प्रमाण में दी जाती थी। इसीलिये नरनारायण ऋषि अस्त्र चलाने में समर्थ हुए, आंगिरस ऋषि अस्त्र-प्रयोग तैयार करते रहे और विश्पला जैसी स्त्री समय आनेपर शत्रुपर हमला करनेके लिये चली। जिसको सैनिकशिक्षा नहीं मिली, वह सेना को लेकर क्या करेगी?

महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती इन स्त्रियोंने भी बडे बडे असुरोंके साथ युद्ध किये हैं और शत्रुओंको परास्त किया। ये स्त्रियां सैनिक-शिक्षा के बिना युद्ध करने को गयीं थी, ऐसा कहना अयोग्य है। अस्तु। इस तरह आवश्यक सैनिकशिक्षा होने के समय ही ऐसे युद्ध स्त्रियों से हो सकते हैं, यही इतने लेखका तात्पर्य है।

आजकल वैदिक धर्ममें रहनेवाले घरों की कुमारिकाएं फैशन की गुलाम बनकर सैनिकशिक्षासे दूर जा रहीं हैं, ऐसे समय में विश्पला की कथाएं इनके श्रवन-पथपर जायगीं, तो उनको मार्ग दीख सकता है। पाठक इसका यहां अवश्य विचार करें। स्वतन्त्र वीरवृत्तिसे रहनेवालों को अपने कुमारों को तथा कुमारिकाओं को भी स्वसंरक्षण की सुशिक्षा देना आवश्यक है। यही इससे यहां सिद्ध होता है।

युद्ध के तीन स्थान।

समुद्रयुद्ध, भूमियुद्ध और हवाईयुद्ध ऐसे युद्ध के तीन स्थान आजकल दीख रहे हैं, वैसेहि वेदमें भी दीखते हैं। इस समय युरोपमें, अमेरिकामें तथा जापानमें पाशवी बल की बहुतही वृद्धि हुई है. तथा संहारक साधन बहुतही बढ रहे हैं। अतः इस समयके संहार की तुलना वेदकालके युद्धोंसे

करना अनुचित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि, आजकल के साधन हमारे धनुर्वेदोक्त साधनोंसे कई गुणा बढे चढे हैं। अतः आज के युरोपके युद्ध में जो संहार हो रहा है, वह बहुतही अधिक है। वैसा संहार होनेका वर्णन न वेदमें है और ना ही महाभारतीय युद्धमें है। थोडासा रामरावण के युद्ध में इसका सादृश्य दीखता है, उसका वर्णन हम किसी समय आगे करेंगे। परन्तु वहां भी आजकल के जैसा संहार नहीं हुआ था। तो भी वेदों में उक्त तीनों प्रकार के युद्धों के वर्णन हैं, उनका विवरण इस लेखमें करना है। अश्विनीदेवों के पराक्रमों के वर्णन में दर्याई युद्ध के कई प्रसंग हैं, उनमें एक प्रसंग ऐसा है—

तुग्र नामक एक बडा आर्यराजा वैदिकधर्मी था। इस राजाका साम्राज्य बडा भारी था। इसके राज्य को किसी विदेशी परद्वीपस्थ राजा का बडा उपद्रव होता था। इस उपद्रव देनेवाले शत्रुका राज्य समुद्रके पार किसी रेतीले स्थानमें था। वहां से आकर वह शत्रु तुग्र के राज्य को उपद्रव देता था। एक बार राजा तुग्रने सोचा कि इस शत्रुका नाश करना अच्छा है। शत्रु का नाश होनेसे हमारे राज्य की अच्छी सुरक्षा होगी और प्रजा का उपद्रव दूर होगा। ऐसा विचार कर महाराजा तुग्रने अपने युवराज भुज्युको साथ बडी सेना और बहुत जहाजोंका बडा बेडा देकर, उस शत्रुपर हमला करने के लिये भेजा। परन्तु वहां भुज्युके पहुंचते ही शत्रुने ऐसा इस पर हमला किया कि, उस दर्याई युद्ध में भुज्यु का पूर्ण पराभव हुआ, भुज्युके जहाज टूटे और सब सैनिक समुद्रमें डूबने लगे। इतने में भुज्युने संदेश भेजा, वह अश्विनीकुमारों को मिला। वे अपने हवाई जहाजों से आये, उन जहाजों में भुज्यु की सब सेनाको बिठलाया, जखमी सैनिकोंको आवश्यक चिकित्साद्वारा आराम पहुंचाया और लगातार तीन दिनरात्र हवाई यानोंको दौडाकर तुग्र की राजधानीके प्रति उन सबको पहुचाया। यह बात आगेके मंत्रोंमें पाठक देखें—

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥

(ऋ० १।११६।२)

(वीळु-पत्मभिः) बडे वेगसे आकाशमें उडनेवाले और (आशु हेमभिः) प्रबल त्वरित गतिसे दौडनेवाले तथा (देवानां वा जूतिभिः) दैवी शक्तियों से प्रेरित होनेवाले साधनों से युक्त हुए (नासत्या) अश्विनी देव बडेही पराक्रम करनेवाले हैं, क्योंकि उनके वाहन ने ही (आजा) युद्ध में सहस्रों शत्रु के सैनिकों का नाश करके (प्रधने जिगाय) युद्धमें प्रभावशाली विजय प्राप्त किया ।

इस मंत्रमें 'वीळु-पत्मन्' शब्द विशेष महत्त्व का है । 'वीळु' शब्द बडे सामर्थ्य का वाचक है और 'पत्मन्' शब्द उड्डाण का अर्थ दर्शाता है । बडे सामर्थ्य से प्राप्त होनेवाले, प्रचंड वेगसे उड्डाण करनेवाले हवाई जहाजों का वर्णन यहां हो रहा है । 'पत्मन्' शब्द उड्डाण अर्थ बताता है और यह उड्डाण सदा आकाशमें हि होता है । इसके साथवाला शब्द 'आशु-हेमभिः' है । 'आशु' का अर्थ है शीघ्र, त्वरा, सत्वर, और 'हेम' का अर्थ है गति । अर्थात् 'आशुहेम' का अर्थ है त्वरा से शीघ्र और सत्वर होनेवाली महागति । आगेपीछे का सम्बन्ध देखने से पता लगता है कि, ये दोनों शब्द हवाई जहाजों के लियेही यहां प्रयुक्त हुए हैं । जो वेग और जो गति यहां इन शब्दोंद्वारा दर्शायी जा रही है, वह बैल की या घोडे की गति निःसन्देह नहीं है । साथहीं साथ यहां 'देवानां जूतिभिः' शब्द पडे हैं, जो इस बातकी विशेष स्पष्टता करते हैं ।

जहाजों की गति देवोंकी सहायता से (देवानां जूतिभिः) होनेका वर्णन यहां है । गति देनेवाले देव (जल, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्) ये ही हैं । उक्त विमानों में इन देवों की सहायता वेग प्राप्त करनेके लिये ली थी, ऐसा यहां के शब्द देखने से स्पष्ट हो जाता है । उक्त मंत्रमें

अश्विदेवोंके वाहन के द्वारा हिं युद्ध में सहस्त्रों शत्रुसैनिकों का वध होने का वर्णन विशेष सूक्ष्म दृष्टि से देखनेयोग्य है। अब अगला मन्त्र देखिये--

तुग्रो ह भुज्युं अश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवां अवाहाः।
तमूहथुः नौभिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः ॥
(ऋ० १।११६।३)

"तुग्रनामक सम्राट्ने अपने भुज्यु नामक पुत्रको (उदमेघे) समुद्र में (अर्थात् समुद्रके पारके शत्रुपर हमला करने के लिये) भेजा था। जैसा कोई मरनेवाला मनुष्य अपने धनकी आशा छोडता है, वैसा ही यह हुआ। उस समुद्र में डूबनेवाले भुज्युनामक राजकुमार को आपने (नौभिः) ऐसी नौकाओं से (ऊहथुः) उठाया, जो नौकाएं (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अन्तरिक्ष--आकाश में संचार करनेवाली थीं और साथसाथ (अपोदकाभिः) पानी में भी चलती थीं और वह नौकाएं ऐसी थीं कि, (आत्मन्वतीभिः) जो सुदृढ और जैसी चाहे वैसी चलायी जानेवाली--आत्मावाली--सजीव जैसी थी।"

हवाई जहाजों का विचार करनेके समय यह मन्त्र बडा ही उपयोगी है। पहिले तो ये नौकाएं (अन्तरिक्षप्रुत्) अन्तरिक्ष में-- आकाश में संचार करनेवाली थीं। निःसन्देह यह शब्द हवाई जहाज--वायुयानों का वाचक है। यह शब्द आकाश में संचार करनेवाले विमानों का वाचक है, क्योंकि इसका दूसरा कोई अर्थ हो ही नहीं सकता। इससे हवाई जहाज का ही यह वर्णन है, यह बात सिद्ध होती है।

साथ साथ ये हवाई जहाज--वायुयान--आवश्यकता होनेपर पानीमें भी चलाये जाते थे, यह बात इस मन्त्र के 'अप--उदकाभिः' इस शब्द से स्पष्ट हो जाती है। चाहे जिस समय ये जहाज हवा में वेग से उडते थे और आकाश में संचार करते थे, और चाहे उस समय समुद्र में भी पानी

-को काटते हुए, (अप-उदक) चलते थे। पानी में, समुद्र में और हवा में चलनेयोग्य कला-यन्त्र की योजना इन जहाजों में भी थी, यही इनकी विशेषता है। जहाज हवा में भी चले और पानी में भी चले और (देवानां जूतिभिः) पानी, अग्नि, सूर्य, विद्युत, वायु आदि दैवी शक्तियों की सहायता से इनको गति मिले। पाठक इन शब्दोंको अति-सूक्ष्म दृष्टि से देखें। म० ग्रिफिथ महोदय इन शब्दों के ऐसे अर्थ करते हैं—

अन्तरिक्षप्रुद्भिः= Traversing Air,
अपोदकाभिः= unwetted by the billows,
आत्मन्वतीभिः= animated (vessels).

'आत्मन्वती' शब्द का अर्थ है आत्मावाली, जैसा आत्मावाला देह अनेक गतियां कर सकता है, वैसी हि ये नौका भी आत्मावाली होने के समान विविध गति करनेमें समर्थ थी। आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, तिरच्छी, वक्र, गोलाकार आदि जैसी जिस समय गति आवश्यक होगी, वैसी वहां इन से प्राप्त होती थी। इस तरह गति मिलनेके सब साधन इन हवाई जहाजों में थे। यह बात इन शब्दोंसे स्पष्टतया सिद्ध होती है।

ये यान तो पानी पर से भी चल सकते थे, और समुद्रकी लहरियोंसे, इनमें बैठनेवालों को कोई कष्ट नहीं होता था। इनमें ऐसी योजना कला-यंत्रोंद्वारा की गयी थी, कि जिनसे समुद्र के पानी का कोई डर इनको तथा इनमें बैठनेवालों को न हो। इनकी गति आकाश में होती थी, यह तो ऊपर बताया ही है। यह आकाशयान बडे भारी वेगके साथ चलते थे, इसका वर्णन इससे पूर्व आ चुका है। ये नौकाएं जैसी समुद्र के पानी में, वैसी हि हवामें चलती थीं। तथा भूमिपर भी इनकी गति थी, इस का प्रमाण हम आगे बतावेंगे। जमीनपर चलनेके लिये इनको सौ चक्र भी लगाये थे। सौ चक्र लगानेयोग्य ये रथ बडे थे, यह इससे स्पष्ट

ही होता है। मोटारको चार चक्र होते हैं, जिस में ६ से २५ तक मनुष्य बैठते हैं। अतः सौ चक्र लगानेयोग्य वाहनोंमें दो–तीन सौ मनुष्य बैठनेमें सन्देह ही क्या हो सकता है ?

उक्त तथा आगे आनेवाले अनेक मंत्रोंमें भुज्यु की सब सेना अश्विदेवोंके इन वायु–यानों में बिठलाई गई थी, उनमें कुछ जखमी भी थे, युद्धके बचे शस्त्रास्त्र भी रखे गये थे, तथा अश्विदेवों के अपने युद्ध–साधन भी अन्दर थे। अर्थात् इतना सब सामान रहनेयोग्य ये नौकाएं बडी थीं। देखिये—

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिः नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतंगैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः॥
(ऋ० १।११६।४)

“ भुज्यु नामक राजपुत्र जिस शत्रु का नाश करने के लिये समुद्र के पार गया था, वह शत्रु (समुद्रस्य पारे) समुद्र के पैल तीर पर रहनेवाला था। वहां (धन्वन्) जो रेतीला प्रदेश है, वहां का वह राजा था। वहां भुज्यु राजपुत्र गया था। पर वहां उसका पराभव हुआ। वहां (शतपद्भिः) सौ चक्र लगे हैं ऐसे और (षड् अश्वैः) छः अश्वशक्तियोंसे युक्त (त्रिभिः रथैः) तीनों रथों के साथ (तिस्रः क्षपः त्रिः अहा) तीन रात्री और तीन दिन इतने समय तक (अतिव्रजद्भिः) अति वेगसे दौडनेवाले (पतंगैः) पक्षी के समान हवाई यानों से (भुज्युं ऊहथुः) भुज्यु को उठाया और उसके घरको पहुंचाया। ”

यहां तीन रथों का वर्णन है। इन रथोंका नाम ‘ पतंग ’ कहा है। पतंग पक्षी का वाचक शब्द है और कागज का पतंग करके लडके खेलते हैं, वह पतंग भी आकाश में उडता है। इससे पतंग–संज्ञक यान आकाश में उडते हैं, अर्थात् वे वायुयान वा विमान ही हैं, यह सिद्ध है। यद्यपि इनको ‘ रथ ’ कहा है, जैसा विमान को ‘ हवाई जहाज ’ कहते हैं,

वैसीहि यह बात है। रथ भूमिपर चलनेवाला है, तथापि जलरथ नौका है और आकाशरथ विमान है। अतः रथ शब्दसे इन पतंगों के वायुयान होनेमें सन्देह नहीं है। पतंग शब्द का दूसरा कोई अर्थ नहीं है।

इन पतंगसंज्ञक वायुयानों को (शत्-पत्--भिः) सौ पांव जैसे चक्र लगे हुए थे। पांवोंसे चलना भूमिपरहि होता है। इसलिये भूमिपरसे यह रथ दौडता रहे, इसलिये इस वायुयान को सौ चक्र लगे थे।

चक्र छोटे से छोटा भी माना जाय, तो एक हाथ लंबा चौडा माना जा सकता है। दो कतारोंमें रथके चक्र होते हैं, इसलिये ५० चक्र एक ओर और ५० दूसरी ओर लगाये होंगे, जैसे मोटार लारी को छः या आठ लगे होते हैं। वैसे ही इन अश्विदेवों के यानों को ये चक्र लगे होंगे। ऐसी कल्पना करनेपर ये यान कमसे कम ५०।६० हाथ लंबे होंगे, इसमें संदेह नहीं हो सकता। चक्रों के स्थान को छोडकर विमान के पंख और पुच्छ ये भाग इससे दुगणे या तीन गुणे लंबाई में होंगे हि। ६० हाथ लम्बी मोटार लारी बनाई, तो उसमें निःसन्देह सौ मनुष्य आराम से बैठ सकेंगे। यह तो हम कमसे कम इस यान के प्रमाण की कल्पना कर रहे हैं। संभव है कि, ये यान उक्त वर्णन से बहुतही बडे होंगे।

ये यान (समुद्रस्य आर्द्रस्य पारे धन्वन्) जल से भरे समुद्र के पार रेतीले प्रदेशतक पहुँचे थे। समुद्र के पार रेतीला प्रदेश अरबस्तान, अफ्रिका, मिस्र ये देश तो हमारी कल्पनामें आते हैं, संभव हैं कोई दूसरे देश भी होंगे। मिस्र देश के राजे भारतीय राजाओं के साथ लडते भी थे और मिस्र देश रेतीला भी है। हमें निश्चय नहीं है कि उक्त मन्त्रमें जो रेतीला प्रदेश है, वह कौनसा है। पर मन्त्रस्थ वर्णन की कल्पना प्रकट करनेके लिये हम मिस्र देश परहि भुज्युने चढाई की थी, ऐसी कल्पना करते हैं। कोई दूसरा देश होगा, तो न्यून वा अधिक अन्तर हो जायगा।

भुज्यु अपने बेडे के साथ, अपनी सेनाके साथ मिस्र देश पर हमला करने के लिये गया था। वहां पहुंचते ही जो शत्रुका हमला हुआ, उसमें भुज्युका पराभव हुआ और वह अपनी सेनाके साथ डूबने लगा। भुज्युने अश्विदेवों की प्रार्थना की, वह अश्वियों को मालूम हुई और अश्विदेव अपने उक्त जहाजों के साथ वहां पहुंचे, और भुज्यु को सेनाके साथ अपने जहाजों में लेकर तीन दिन और तीन रात्रियों के समयमें अति वेग से दौडते हुए, भुज्यु की राजधानीमें पहुंचे। अर्थात् तीन दिन और तीन रात्रियों के घंटे ७२ होते हैं। ७२ घण्टों का प्रवास अश्विनी देवों के वायुयानों ने किया। आजकलके वायुयान प्रति घण्टा १०० से ३०० मील-तकके वेगसे आकाश में दौडते हैं। सौ मीलसे कम वेग रहनेपर आकाशमें रहना आज के यानों को असम्भव है। यदि प्रति घण्टा सौ मील वेगसे अश्विदेवोंके वायुयान दौडे, ऐसा मान लिया जाय, तो ७२०० मीलों के प्रवासके अन्तर पर भुज्यु का शत्रु था, ऐसा प्रतीत होगा। मन्त्रमें 'अति-व्रजद्भिः' पद है। अतिवेग से वे यान जाते थे, ऐसा भाव इस पदसे दीखता है। हम आजकल के वेगके आधा वेग भी मान लें, तो उक्त अश्वि-देवों के वायुयानों का प्रवास करीब ३००० मीलोंका हुआ था, ऐसा सिद्ध हो सकता है।

अर्थात् इतनी दूरीपरके शत्रुपर नौकाद्वारा सेना ले जाना और वहां उसके समुद्रमें हमला करके उसका पराभव करना, यह कार्य बडा कठिन है। शत्रुपर आक्रमण हमला–करने के लिये दस गुनी सेना आवश्यक होती है। शत्रुसेना से कम फौज होनेपर आक्रमक युद्ध कदापि नहीं हो सकता।

भुज्यु का शत्रु अपने राज्यमें था, उसके कीले आदिके आश्रयसे हि वह वहां होगा। भुज्युको परदेशमें जाकर लडना था। यह अत्यंत कठिन कार्य था। शत्रुके बलका विचार करकेहि भुज्युने अपने साथ फौज तथा युद्ध–साधन लिये होंगे। भुज्यु या उसका पिता तुग्र साम्राज्य करते थे

और वे कोई पागल आदमी नहीं थे। इस कारण अपने स्थानसे चलने के पूर्व अपने और शत्रु के बल का विचार उन्होंने अवश्य किया होगा और उतने पर्याप्त बल और साधन अपने साथ लिये होंगे कि, जितने अपने विजय के लिये पर्याप्त हो सकते हैं। साधारण विचार करनेवाला वीर भी ४।५ सहस्र वीर सैनिक अपने साथ लिये विना, दोतीन सहस्र मील दूरीपर के आक्रमक युद्ध के लिये, बाहर नहीं निकलेगा। विदेशमें अपने को कोई साधन प्राप्त नहीं हो सकते, इसलिये सब युद्धसाधन, सब भोज-नाच्छादि के साधन तथा कपडेलत्ते इतने सैनिकों के लिये, इतना तो लेना आवश्यक हि है। हमारा ख्याल यह है कि इतनी सामग्री तो भुज्यु के साथ अवश्य होगी। भुज्यु कब चला और वहां कितने समयमें पहुंचा, इसका कोई लेख वेदग्रन्थ में नहीं है; परन्तु अश्विदेवों के वायुयान तीन अहोरात्र प्रवास करके वापस आये, ऐसा ऊपर के मन्त्रमें कहा है। जिससे शत्रु के रेतीले प्रदेश की दूरीकी कल्पना हो सकती है।

इतने दूर देश को पहुंचने के लिये भुज्यु को दस-गुने दिन अवश्य लगे होंगे, क्योंकि भुज्यु नौकाओं से गया था, वायुयान उसके पास नहीं थे। वायुयान की अपेक्षा नौका की यात्रा के लिये दिन अधिक लगते हैं। आज भी विमान से विलायत की यात्रा ५ दिन में होती है और नौकाओं की १५।२० दिनोंमें। अतः अश्विदेवों के वायुयान तीन अहोरात्र में आये थे, वहां भुज्यु को जाने के लिये १५।२० दिन अथवा अधिक दिन अवश्य लगे होंगे।

इतने दिन समुद्रमें रहनेके लिये सहस्रों मनुष्यों के लिये कितना अन्न और पानी लगा होगा और उसको रखने के लिये कितना स्थान आवश्यक होगा, इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। अर्थात् भुज्यु की नौकाएं भी पर्याप्त बडी होंगीं और सब साधनों से सम्पन्न होंगीं।

भुज्यु का पराभव हुआ। तब भुज्यु ने अश्विदेवों को सन्देश भेजा। वह उनको मिला। यह सन्देश केवल प्रार्थना से हि भेजा, ऐसा मानना योग्य है, वा कोई वैद्युत् सन्देशवाहक साधन उसकी नौकापार था, उसकी खोज होनी है। परन्तु यदि वैद्युत् यंत्रद्वारा सन्देश भेजा गया था, ऐसा माना जाय, तो और एक सन्देशप्रेषणाविद्या भी उस समय थी, ऐसा उससे सिद्ध होगा। पाठक इसका अधिक विचार करें।

कम से कम ३००० मीलों पर समुद्र के अज्ञात प्रदेश में भुज्यु पहुंचा था। वहां से उसने मानसिक सन्देश भेजा अथवा वैद्युत् संदेश भेजा, पर संदेश अश्विनी-देवों को पहुंचा यह सच है। अश्विदेव अपने हवाई जहाज में बैठकर चले। यहां एक विचारणीय बात है कि, समुद्र के फलाणे स्थान पर भुज्यु अपने बेडे के साथ डूब रहा है, यह अश्विदेवों को कैसा विदित हुआ? और यदि यह विदित न हुआ, तो वे वहां कैसे पहुंचे? अक्षांश-रेखांश (Latitude and longitude) का ठीक पता न लगा, तो समुद्रमें किस स्थान पर कौन है, इसका पता लगना संभवहि नहीं है। यह एक बडा शास्त्र है और वह शास्त्र अश्विदेवों के यान चलानेवालों को विदित था, इसमें सन्देह नहीं। दिशादर्शक यन्त्र भी इन वायुयानों पर होगा। नौकामें भी इसकी आवश्यकता रहती है। अश्विदेव अतिशीघ्रही उस समुद्रके भागमें पहुंचे कि जहां भुज्यु और उसके सैनिक डूब रहे थे। ये लोग जहाजों के टूकडोंके आश्रय से वहां पडे होंगे, तो भी यदि अश्वि-देव शीघ्र न पहुंचते, तो भुज्यु को जीवित दशामें प्राप्त करना असंभव था। अर्थात् भुज्यु का सन्देश मिलने से एक दो दिनों के अन्दरहि वे वहां पहुंच चुके होंगे।

पाठक इस तरह विचार करके जान सकते हैं कि, कौनसी विद्या अश्वि-देवों के पास थी और कौनसी नहीं। सूक्ष्म विचार से हि यह जाना जा सकता है।

अश्विदेवों के (त्रिभिः रथैः) तीन यान थे और इन तीन यानोंमें भुज्यु को तथा उसके सब सैनिकों को बिठलाया गया था, यह बात निश्चित है। श्री रामचन्द्र पुष्पक विमान से लंकासे अयोध्यामें १२ घण्टों से पहुंचे थे। यह गति भी घंटेमें सौ मीलकी हि होती है, क्योंकि लंकासे अयोध्या करीब १२०० मीलही है। इसलिये अश्विदेवों के यान प्रति घण्टा १०० मील चलते होंगे, ऐसा जो हमने ऊपर अन्दाज किया है, वह बहुत अशुद्ध नहीं होगा।

इस मन्त्रमें (षड् अश्वैः = षळ् अश्वैः) पद है। छः अश्वों से ये अश्विदेवों के यान चलते थे ऐसा इससे सिद्ध होता है। पतंग जैसे अर्थात् पक्षियों जैसे आकाश में उडनेवाले यान, जो (अप-उदक) जलमें भी चलते हैं, और जो (अन्तरिक्ष-प्रुत्) आकाशमें भी चलते हैं, वे छः घोडों से चलते होंगे, ऐसा कभी माना नहीं जा सकता, क्योंकि घोडे न तो जलमें चलते हैं और नाही आकाशमें दौडते हैं। अतः यहां का 'षड्श्व' शब्द किसी प्रकार के अश्वशक्ति का वाचक है न कि घोडेका। आजकल Horse-power शब्द इंजिनों की शक्ति के प्रमाण के लिये प्रयुक्त होता है, इस शब्द का अर्थ 'अश्वशक्ति' हि है। इंजिन इतने अश्वशक्तिवाला है, ऐसा कहते हैं। यहां 'षळश्व' शब्द छः अश्वशक्ति का वाचक है। पर आजकल की परिभाषानुसार छः अश्वशक्ति के इंजिनद्वारा इतने बडे वायुयान वेग से चलना सर्वथा असंभव है। इसलिये 'षळश्व' शब्द का कुछ सांकेतिक अर्थ होना संभव है, जो इस समय कोई जान नहीं सकता। अतः यह खोज करने योग्य है। यह वैदिक परिभाषा इस समय प्रायः लुप्त हो चुकी दीखती है।

इस मन्त्र के विधान में जो बातें खास संकेत के विना समझमें नहीं आती, वे ये हैं-(१) 'षळश्व' शब्द का आजकी 'Horse-power'की परिभाषामें क्या अर्थ हो सकता है ? (२) भुज्युने जो सन्देश अश्विदेवों

को भेजा, वह किस तरह भेजा ? (३) भुज्यु का सन्देश अश्विदेवों को मिला, परन्तु उनको भुज्यु के समुद्र के अन्दर के स्थान का पता कैसा लगा ? (४) इस विद्या का पता आज लग सकता है वा नहीं ? इत्यादि बातें जानना आवश्यक हैं, पर इनकी खोज करने के साधन इस समय हमारे पास नहीं हैं। कोई इसकी खोज कर सकता है, तो वह करे। भुज्यु बहुत ही बडे अथांग महासागर में पहुंचा था, इसमें सन्देह ही नहीं है, क्योंकि वैसा वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें है।

अनारम्भणे तदवीरयेथां अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥
(ऋ० १।११६।५)

''जिस समुद्रके (अन्--आरम्भणे) आदि अन्त का पता नहीं लगता, (अन्--आस्थाने) जिसके अन्दर ठहरने के लिये बिलकुल स्थान नहीं है, और (अग्रभणे) जिसका ग्रहण हो नहीं सकता, ऐसे अथांग महासागरमें भुज्यु डूब रहा था। वहां अश्विदेव पहुंचे और उन्होंने अपने (शतारित्रां नावं) सौ बल्लियोंवाली नौका पर (आतस्थिवासं) बिठला कर उसको (अस्तं ऊहथुः) घर तक पहुंचाया।'

यहां अथांग समुद्र का वर्णन है। यह वर्णन न बडी नदी का है और नाही छोटे से समुद्रका, परन्तु यह बडे भारी महासागर का वर्णन है। जहां जानेसे, जहां पहुंचनेपर आगे, पीछे और अपने चारों ओर समुद्र ही समुद्र दीखता है, किसी भी तरफ भूमि का नाम-निशान भी दीखता नहीं, ऐसे महासागर का यह वर्णन है।

यहां 'शतारित्रां' शब्द पडा है। सौ बल्लियां इनकी नौका में लगी थीं। एक एक बल्ली को एक, दो, चार, पांच और दस तक मनुष्य खींचने के लिये लगते हैं। यह उनकी लम्बाई, जहाज की मोटाई और वेग की

आवश्यकता पर निर्भर है। दस आदमी एक एक बल्ली के लिये लगे, तो सौ बल्लियों के लिये सहस्र मनुष्य लग सकते हैं। हजार मनुष्यों द्वारा चलायी जानेवाली नौका छोटी नहीं हो सकती। सौ मनुष्य जिनमें बैठते हैं, ऐसी नौका को पांच मनुष्य अच्छी तरह चला सकते हैं। इससे अनुमान हो सकता है कि अश्विदेवों के जहाज कितने बडे थे और उनमें कितने मनुष्य बैठते होंगे।

यहां प्रश्न हो सकता है कि, यदि यहां सौ बल्लियां चलाने के लिये लगी होंगीं, तो ये नौकाएं हाथ की शक्तिसे ही चलती होंगीं। पर यह कथन ठीक नहीं। पहिले अश्वशक्ति का वर्णन है और षडश्व नामक कोई शक्ति चलाने के लिए वहां लगी थी, यह वहां स्पष्ट हुआ है। इसके अतिरिक्त दैवी शक्ति से ये नौकाये चलती थीं, ऐसा भी ऊपर कहा गया है, अर्थात् पानी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत् आदि में से किसी एक या अनेक देवों की शक्तियों का प्रयोग इन में होता था, ऐसा वर्णन पूर्व-स्थल में हो चुका है। सूर्यकिरणों की शक्ति लेकर, विद्युत् की शक्ति लेकर ये यान चलते होगे। यदि यह वर्णन है, तब तो सौ बल्लियां रहने का क्या प्रयोजन है? यह शंका यहां हो सकती है और इसका विचार यहां करना अत्यन्त आवश्यक है।

युद्ध में जब नौका जाती है और जब वह नौका भूमि, जल और अन्तरिक्ष में चलनेवाली है, तब तो उसको तीनों प्रकार के शत्रुओं से सामना करनेकी आवश्यकता है। युद्ध में किस समय कैसी आपद् आवेगी इसका पता किसी को नहीं हो सकता। यदि किसी कारण यांत्रिक इंजिन बंद हो गये और नौका जल में रही, तो मनुष्यों से चलाना आवश्यकहि है। अर्थात् यह बल्लियों की योजना, यह हाथसे चलाने की योजना, आपत्कालके लिये ही है। यन्त्रशक्ति बंद होनेपर इसकी आवश्यकता होगी। यह एक दूरदार्शता की योजना है।

आजकल भी इतने इतने बडे जहाज होते हैं, तौ भी उन पर छोटी होडियाँ, छोटी नौकाएं होती हैं, इतना नहीं, परन्तु उनपर हरएक आदमी का जीव बचाने के लिये गले में डालने के गोल गोल जीवक भी होते हैं। बडा जहाज किसीं कारण टूट गया, तो उसपर के प्रवासी इन साधनों से अपना जीव बचाते हैं। ऐसेही समय पर उपयोग होने के लिये अश्विदेवों के यानों में सौ बल्लियां लगी थीं। हमें इसका पता नहीं कि, जिस तरह जलचारिणी नौका में बल्लियां होती हैं, वैसीहि वायुयान में भी किसी कलाविशेषसे प्रयुक्त हो सकती हैं वा नहीं। आजकल तो ऐसी कोई कला नहीं है। अतः हम तो इस समय यही समझ रहे हैं कि यह युक्ति जल के अन्दर की आपत्ति का निवारण करने के लिये ही होगी। अस्तु।

भुज्यु को तो समुद्र हि में अश्विदेवों ने पकडा और वहीं से उसको पित के पास पहुंचाया इस विषय में देखिये—

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना।
युवं भुज्युं अर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः॥
(ऋ० १।११७।१४)

"हे अश्विदेवो! आप (तुग्राय) राजा तुग्रके लिये (पूर्व्येभिः एवैः) पहिली सहाय्यताओंसे तो पूज्य और प्रिय थे हि, पर आप (पुनः) फिर भी (मन्यौ अभवतं) मान्य हो गये हैं, क्योंकि (भुज्युं) तुग्र के युवराज राजपुत्र भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) बडे महासागर में से (ऋज्रेभिः अश्वैः) बडे वेगवान् वाहनों से आपने ऊपर उठाया और घर को पहुंचाया।"

अश्विदेव और तुग्रराजा इनका सख्य तो पहिलेसेहि था, पर इस समय अश्विदेवोंने उसके पुत्र का बचाव करनेके कारण उस मित्रता की बडी वृद्धि हुई है। तथा—

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं॥ (ऋ० १।११९।४)

"'आपने (भुरमाणं भुज्युं) जलोंमें डूब मरनेवाले भुज्यु नामक राजपुत्रको (विभिः गतं) उडनेवाले पक्षियों जैसे यानों से पहुंचकर (स्व-युक्तिभिः) अपनी खास युक्तियों से (पितृभ्यः आ निवहन्ता) पिता के पास लाया। आप (वृषणा) बलवान् हैं, अतः (विजेन्यं) अति दूर देशतक (यासिष्टं) आप गये और उसको बचाया।"

यहां 'विभिः' पक्षियों जैसे यानोंका प्रयोग स्पष्ट है। म० ग्रिफिथ भी इसका अर्थ 'With flying birds' ऐसा करते हैं। जैसे पक्षी उडते हैं, वैसे उडते हुए यानों से ये गये थे। 'स्वयुक्ति' शब्द का अर्थ बडा ही बोधप्रद है। अश्विदेवों के यानोंमें अश्विदेवोंने अपनी निज युक्तियों से कुछ खास प्रबंध किया हुआ था। जो अन्य यानोंमें नहीं था। इसी खास प्रबंधों के कारण ये यान ऐसे विशेष कार्य करने में समर्थ होते थे। अश्विदेव शीघ्र भुज्युके पास पहुंचे और उसको अतिशीघ्र अर्थात् तीन दिनकी अवधि में पिताके घर पहुचाया, यह सब अश्विदेवों से हि होनेवाला कार्य है। तथा-

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुं ऊहथू रजोभिः।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिः अर्णसो निरुपस्थात्॥
(ऋ० ६।६२।६)

"(तुग्रस्य सूनुं भुज्युं) राजा तुग्र के पुत्र भुज्यु को आपने (निरुपस्थात् अर्णसः समुद्रात् अद्भयः) अथांग महासागर के बडे जलों से (अरेणुभिः रजोभिः) जहां धूली नहीं होती, ऐसे अन्तरिक्षके मार्गोंसे (ऊहथुः) उठाकर (योजनेभिः) विविध प्रकार के योजनाओं से युक्त (विभिः) पक्षियों जैसे (पतत्रिभिः) पक्षिरूप यानों के द्वारा तुमने पहुंचाया।"

यहां समुद्र का वर्णन करते हुए (निरुपस्थात्) निराधार जैसे समुद्र से ऐसा वर्णन आया है। यह वर्णन पीछे आये वर्णन के साथ देखने से समुद्र के अथांग भाव की स्पष्टता प्रकट होती है। 'विभिः पतत्रिभिः' ये दो शब्द

वे यान पक्षी जैसे थे, यह स्पष्ट करते हैं। तथा "अरेणुभिः रजोभिः" ये शब्द धूलीरहित आकाश के मार्गों का बोध करते हैं। 'रजालोक' अन्तरिक्ष लोक ही है। इससे स्पष्ट ही है कि ये यान आकाश में चलनेवाले विमान ही हैं। वायुयान या हवाई जहाज ऐसा ही इनको कह सकते हैं। इनका आकार पक्षियों का जैसा था, ये आकाश में दौडाये जाते थे, और बडे वेग से चलते थे। इनकी गतिके लिये किसी भी अन्य आधारकी आवश्यकता नहीं थी।

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता॥

(ऋ० ७।६९।७)

"आपने (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुद्रमें जखमी होकर पडे हुए भुज्यु नामक राजपुत्र को (अस्रिधानैः) जिनमें कुछ न्यूनता नहीं है, सब साधनों से जो परिपूर्ण हैं, (अश्रमैः) जिन में बैठनेवालों को श्रम नहीं होते, (अव्यथिभिः) जिनमें बैठनेवालोंको कोई व्यथा नहीं होती, ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षी जैसे यानों से (अर्णसः उत्-ऊहथुः) समुद्र से ऊपर उठाकर अनेकानेक युक्तियोंसे (पारयन्ता) समुद्र पार करके पहुंचाया।"

यह मन्त्र बडा स्पष्ट है। 'अवविद्धं भुज्युं' इन पदोंसे पता चलता है कि, भुज्यु राजपुत्र विद्ध अर्थात् शत्रुके शस्त्रों से जखमी होकर (समुद्रे) समुद्र में पडा था। युद्ध में न केवल परास्त ही हुआ, परन्तु वह घायल भी हुआ था। उस राजपुत्र को (उत्-ऊहथुः) ऊपर उठाकर अश्विदेवोंने अपने आकाश-यानों में लिया। यहां ऊपर उठाने का वर्णन स्पष्ट है। अर्थात् अश्विदेवों के यान आकाश में खडे रहे और कुछ युक्तियों से उन्होंने इस घायल राजपुत्रको ऊपर उठाया और अपने यानोंमें लिया। 'पतत्रिभिः' पक्षी जैसे यान ये थे, यह तो इसका आशय स्पष्टही है। पहिले भी अनेक

बार यह शब्द आया है और साथ साथ 'विभिः' शब्द भी उसी अर्थ का वाचक है। इससे ये यान वायुयान हि थें, यह स्पष्ट हो जाता है।

ये यान बनावट की दृष्टिसे उत्तमोत्तम ही थे। क्योंकि इनमें बैठने से कोई श्रम नहीं होते थे, न कोई कष्ट होते थे और इनमें सब साधन भी मौजूद थे। रोगियों की चिकित्सा करना, जखमी वीरों को उपचार करना, शस्त्रक्रिया करना, तथा अन्य आवश्यक साधन भी इन यानों पर थे। 'पारयन्ता' शब्द समुद्र के पार ले जाने का यहां सूचक है। ये सब शब्द निःसंदेह इन यानों का स्वरूप बता रहे हैं। तथा और देखिये—

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईंखितम्।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम्॥ (ऋ० १०।१४३।५)
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः॥ (ऋ० ७।६८।७)

"आपने डूबनेवाले भुज्युको समुद्र से उठाकर (रजसः)अन्तरिक्षके मार्ग से पार पहुंचाया। आप (पतत्रिभिः) पक्षियों जैसे वाहनों से वेगसे वहां पहुंचे थे।"

"आपने समुद्र के बीचमें जो कठिन अवस्थामें पडा था, उस भुज्यु को मित्रभावसे उठाकर सुरक्षित पहुंचाया।"

इत्यादि मंत्रों से यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि, वायुयानोंसे हि अश्विदेव भुज्यु के डूबने के स्थानपर पहुंचे थे और समुद्रमें से हि उन्होंने उसको ऊपर उठाया था। समुद्र तो अथांग था हि और शत्रु तो रेतीले प्रदेश का राजा था। वहांतक अश्विदेवों के वायुयानों को पहुंचना था।

भुज्यु राजपुत्रके पिता तुग्र हैं। ये अश्विदेवों के मित्र थे। अश्विदेवोंने उनको बहुतवार सहायता की थी। और अब राजकुमार की रक्षा करने के

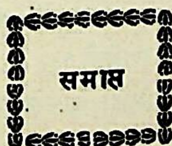
कारण अश्विदेवों के बडे ही उपकार भुज्युपर हुए थे। इस कारण तुग्र के मनमें अश्विदेवों की भक्ति (पुनर्मन्या) बहुत बढ गयी थी।

अश्विनीकुमार वैद्य होने की प्रसिद्धि है, पर वे यहां वायुयानोंके मालिक और जलयुद्ध, स्थलयुद्ध और वायुयुद्धमें प्रवीण दीखते हैं। उनकी नौकाओं पर इन युद्धों के साधन उपस्थित थे। साथ हि साथ घायलों की परिचर्या तथा चिकित्सा के साधन भी थे ही।

उक्त मन्त्रमें 'स्वयुक्तिभिः' शब्द है। इससे पता चलता है कि वायु-यानों में विविध प्रकार का सुधार करने करवानेमें अर्थात् यन्त्र के सुधारमें भी वे प्रवीण थे।

इस तरह का वर्णन वेदमें है। इससे उत्तम वायुयानों की तथा दर्याई युद्ध की कल्पना पाठकों को हो सकती है।





वेदोंका मुद्रण

आर्य मात्र की श्रद्धा वेदोंपर अखण्ड है, क्योंकि इनके धर्मग्रंथ 'वेद' नामसेहि जगत् में प्रसिद्ध हैं और वे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। पर सब वेद छपे हुए कहीं भी नहीं मिलते।

इन ग्रन्थों की छपाई करनेका कार्य बडा कठिन, बहुत खर्चासे होनेवाला, बहुत परिश्रम करनेपरभी बडा नुकसान देनेवाला और अत्यंत जिम्मेवारीका विकट है, इसीलिये इनकी छपाई का कार्य इस समयतक किसीने नहीं किया, वह कार्य स्वाध्यायमण्डलद्वारा किया जा रहा है और शीघ्रही समाप्त करनेका विचार है।

प्रत्येक वेदके आठदस वेदवेत्ता दशग्रंथी विद्वान् ब्राह्मणों की सहायतासे प्रत्येक वेदकी छपाई यहां हो रही है, इसलिये यह छपाई निर्दोष हो रही है। ये वेद जहांतक संभव है, वहांतक अथक परिश्रम करके हम शुद्ध, सुन्दर, सस्ते और उत्तम छाप रहे हैं।

इस व्यवहारमें बडी हानि हो रही है, इसलिये धर्मप्रेमी सहृदय सज्जनों को इसकी उचित सहायता करना चाहिये। आर्थिक सहायता के विना ऐसे महान् कार्य होही नहीं सकते, यह तो सब जानते ही हैं। अन्यधर्मियोंने अपने अपने धर्मग्रंथों का मुद्रण किया है, केवल हिंदुओंके ही सब धर्मग्रंथ छपने हैं, अतः यह कार्य अत्यंत आवश्यक समझकर धर्मप्रेमी लोगोंने इसकी सहायता करना चाहिये।

इस समयतक जो सहायता मिली, उससे निम्नलिखित ग्रन्थ छपकर तैयार हुए हैं-

छपकर तैयार हैं।

१. ऋग्वेद-संहिता (अनेक सूचियोंके समेत) ५) रु०

२. वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद-संहिता २) रु०

(काण्वपाठभेद-सहित)

३. (शुक्ल यजुर्वेद) काण्व–संहिता ३) रु०

(अनेक सूचियोंसे युक्त)

४. सामवेद–संहिता ३) रु०

(कौथुमी तथा राणायणीय अनेक सूचियोंसमेत)

५. अथर्ववेद–संहिता (अनेक पाठभेद सहित) ३) रु०

निम्नलिखित ग्रन्थ छप रहे हैं, इनके मुद्रणके लिये सहायता चाहिये–

छप रहे हैं।

६. मैत्रायणी–संहिता (यजुर्वेद) छप रही है। ५)रु०

७. काठक संहिता " " ५) "

८. तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण यजुर्वेद) " ५) "

९. सामगान " १०) "

निम्नलिखित ग्रंथ मुद्रित करने के हैं, इनकी तैयारी हो रही है, इनके लिये भी सहायता चाहिये—

१०. पिप्पलाद संहिता (अथर्ववेद)

११. जैमिनीय संहिता (सामवेद)

१२. (जैमिनीय) सामगान (३६८१ गान)

इनमेंसे प्रत्येक ग्रन्थको उसके आकारकी अपेक्षासे न्यूनसे न्यून ५०००) और अधिकसे अधिक १२०००) रु० व्यय लगेगा, ये सब मूल ग्रंथ हैं। इसके पश्चात् सब ब्राह्मणग्रन्थ, सब आरण्यक, सब उपनिषद्, सब स्मृति का मुद्रण होगा। तथा इनका अनुवाद भी छपना है। अतः सब सनातन धर्माभिमानी लोग इसकी सहायता करें।

अध्यक्ष–स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि० सातारा)

Aundh (Dist: Satara)

श्रीमद्भगवद्गीता ।

(टीकालेखक- पं० श्री० दा० सातवळेकर.)

इस 'पुरुषार्थबोधिनी' भाषाटीका में यह बात दर्शाई गई है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों के ही सिद्धांत गीता में नये ढंग से किस प्रकार कहे हैं। अतः इस प्राचीन परंपरा को बताना इस 'पुरुषार्थबोधिनी' टीका का मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है।

गीता- के १८ अध्याय ३ सजिल्द पुस्तकों में विभाजित किये हैं—

अध्याय	१ से ५ मू०	३)	डा० व्य० ॥=)
"	६ " १० "	३)	" " ॥=)
"	११ " १८ "	३)	" " ॥=)

इकट्ठा लेनेपर डा० व्य० सहित मू० ९) रु० होगा।

भगवद्गीता-समन्वयः ।

'वैदिक धर्म' के आकारके १२६ पृष्ठ, चिकना कागज, मू० १), सजिल्द का मू० १॥) रु०, डा० व्य० ।=) डा० व्ययसहित मूल्य भेज दीजिए। यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन करनेवालोंके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची।

इसमें श्रीगीताके श्लोकार्धोंकी अकारादि क्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है। मू० केवल ।=) डा० व्यय =)

भगवद्गीता-लेखमाला।

'गीता' मासिकमें प्रकाशित गीताविषयक लेखोंका यह संग्रह है। इसके सात भाग तैयार हैं, जिनका मू० ५॥) रु० और डा० व्यय १॥) है।

मन्त्री—स्वाध्याय-मण्डल, औंध, (जि० सातारा.)



मुद्रक और प्रकाशक- वसन्त श्रीपाद सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

परिशिष्ट–प्रातर

चतुर्वे

भा